संस्थापक—श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी – महाराज मण्डलेश्वर

विश्वनाथ

अर्थ काम



धर्म मोक्ष

वर्ष ४

सानन्दमानन्दवने वसन्तमानन्दकन्दं हतपापवृन्दम् ।
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ॥

अंक ७

भगवन्नामावलि

हरहर महादेव शम्भो काशी-विश्वनाथ गङ्गे ।
साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव जय शङ्कर ।
हर हर शङ्कर दुःखहर शङ्कर सुखकर भयहर हर शङ्कर ॥
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे ! नाथ नारायण वासुदेव ।
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण, श्रीमन्नारायण नारायण नारायण ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

पढ़िये और ध्यान दीजिये

अपको विदित ही है कि—विश्वनाथ निःस्वार्थभावसे केवल—धर्म प्रचार एवं आध्यात्मिक ज्ञानोन्नतिके लिये ही निकाला जा रहा है। कीमत भी कम है, और किसी विज्ञापन आदि की आमदनी भी नहीं है, इसलिये विश्वनाथ प्रेमियोंसे प्रार्थना है कि-कमसे कम एक-एक दो-दो अन्य ग्राहक बनानेकी चेष्टा करें।

विश्वनाथ पत्र मिलनेका पता—

विश्वनाथ पत्र कार्यालय,
सिद्ध बाबा अपारनाथ मठ, ढुण्ढीराज गणेश,
बनारस, सिटी ।

वार्षिक मूल्य

भारत में केवल हिन्दी २) गुजराती सहित हिन्दी २।) विदेश में ४) रु०

शिवनामावलि

महादेव! शिव! शङ्कर! शम्भो! उमाकान्त! हर! त्रिपुरारे !।
मृत्युञ्जय! वृषभध्वज! शूलिन्! गङ्गाधर! मृड! मदनारे ॥
हर ! शिव ! शंकर ! गौरीशं ! वन्दे ! गंगाधरमीशम् !।
रुद्रं पशुपतिमीशानं कलये काशीपुरनाथम् ॥
जय शम्भो ! जय शम्भो ! शिव ! गौरीशंकर जय शम्भो !।

साधारण प्रति

भारत में ≡)
विदेश में ।-)

मा०नं०..........

विषय सूची

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य अद्वैत ब्रह्मविद्यामार्तण्ड ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज मण्डलेश्वरजी इस साल काशी मुक्तिक्षेत्रमें ही हैं।

पता—गोविन्दमठ टेढ़ीनीम,
बनारस सिटी।

सम्पादकजीका धर्म प्रचार

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री स्वामी महेश्वरानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर "श्री विश्वनाथ सम्पादक" जी कलकत्ता में हैं। ४५ मूर्ति महात्मा आपके साथमें हैं।

बीकानेरमें धर्म प्रचार

श्रावण मास पर्यन्त साधु ब्राह्मण ११ मूर्ति एक मास तक पार्थिवेश्वर शंकर भगवान्की मूर्ति बनाया फिर श्रावण पूर्णमासीको बड़े धूमधामसे सायंकाल ५ बजे अग्निहोत्र हुआ तत्पश्चात आरतीको गई। आरतीके समय पर दो हजार मनुष्योंकी भीड़ थी।

श्री स्वामी परमानन्द गिरिजी मण्डलेश्वर
बागड़ियोंकी बगीची गोगा दरवाजा बीकानेर।

साधु समाज शीघ्र सचेत हो !!

साहस और संगठनके साथ मैदानमें उतरिये !

सन्यासी, उदासी, निर्मले, दादूपन्थी, कवीर पन्थी, आदि भाइयों !! मुझे आश्चर्य होता है कि आपका सर्वस्व अपहरण होनेके लिये है और आपलोग शान्ति पूर्वक खुर्राटे ले रहे हैं। इसका क्या परिणाम होगा, समझें, और जरा सोचें, यदि आप यह कहें कि-शान्ति ही हमारा धर्म है, तो शान्त क्यों न रहें, तो मैं स्पष्ट शब्दोंमें कहूँगा कि-यह समय शान्तिका कदापि नहीं है। क्रान्तिमय युगको जो शान्तिमय समझ बैठे हैं, उनका सर्वस्व नाश होना स्वाभाविक ही है। अब आप सनातन धर्मावलम्बी सन्त महन्त भाइयोंसे निवेदन है कि-यदि आप लोग आलस्यको त्यागकर विधर्मियोंसे किये हुये, आक्रमणका प्रतीकार करके अपना धर्म तथा स्वत्वको नहीं बचायेंगे, तो निश्चय जानो कि-वह दिन दूर नहीं है कि आपलोग इसलोक व परलोक दोनोंसे भ्रष्ट हो जावेंगे क्योंकि विधर्मि सुधारक पार्टी यहांकि धनादि सम्पति व पारलौकिक धर्म सम्पत्तिको नष्ट करनेमें कटिबद्ध हो रही है अतएव इस बारके संघर्षमें आप लोगों को भी पूरी तत्परता तथा साहसके साथ प्रतिकार करना चाहिये। मैं विश्वास तथा साहस पूर्वक कहता हूँ कि-यदि केवल लङ्गौटी दलवाले ही तन, मन, धन, से सुसंगठित हो जांय, तथा महर्पियोंसे कही हुई "सतांमानेम्लाने मरणमथवादूरगमनम्" इत्यादि नीतिको हृदयमें स्थान देते हुए शत्रुओंसे मुकाबिला करनेके लिये मैदान में आडटेंगे तो निश्चय ही विधर्मियोंको मैदान छोड़कर अपना सा मुह बनाकर भागना ही पड़ेगा। ईश्वरकी दयासे आपलोग बल, विद्या, बुद्धि, धन तथा जनसे परिपूर्ण हैं। परन्तु दो वस्तुके अभावसे सभीकी दृष्टिमें निकम्मे समझे जाते हैं। वह वस्तु है साहस, तथा सुसंगठन, जिस समय हमलोग इन दोनों वस्तुओंको अपनालेंगे तो मजाल क्या है कि-कोई भी विधर्मी हस्तक्षेप करें। या हम लोगोंका बाल बांका कर सकें। अब इन दोनों वस्तुओंको अपनानेका समय आगया है। यदि अब भी हमलोग इन दो वस्तुओंको नहीं अपनावेंगें, तो निश्चय समझलें कि हम लोगोंको पीछे केवल पछताना रह जायगा। यही कहावत चरितार्थ होकर रहेगी कि-"अब पछताये क्या बने, चिड़ियां चुग गयीं खेत"।

कांग्रेसी सरकारसे निवेदन

मैं कांग्रेसी सरकारसे निवेदन करता हूँ कि—कांग्रेसी सरकार सनातन धर्म नाशक तथा संघर्षोत्पादक बिलोंको कौंसिलमें उपस्थित होनेका अवसर देकर सनातन धर्मावलम्बियोंके हृदयपर मार्मिक आघात पहुँचाते हुये भविष्यमें आनेवाली खतरनाक परिस्थितिके लिये द्वार खोल रहा है। मैं कांग्रेसी सरकारसे अनुरोध करता हूँ कि-इस नाजुक समयमें पूरी सावधानीके साथ शासनका बागडोर सम्भालें, नहीं तो यह निश्चय समझलें कि—परिस्थिति काबूमें न रहेगी। शासन कालको कलंकका टीका सदाके लिये लग जायगा। अतः कांग्रेसी सरकार इन खतरनाक बिलोंको श्रीमती महारानी विक्टोरियाकी १८५७ वाली घोषणाको स्मरण करते हुये अपने अधिकारसे पास नहीं होने दें।

निवेदक—

स्वामी शंकर गिरि, दुलारपुर मठ, पो० तेघड़ा, मुँगेर।

सनातन धर्मियों जागिये !!

मैं सनातन धर्मावलम्बी सज्जनोंसे अनुरोध करता हूँ कि-आप लोग वाचालोंके वाग जालमें फस कर अपने सनातन धर्मरूपी अमूल्य रत्नोंको न खो बैठें। इनकी मीठी २ बातोंमें न भूल जायं। क्योंकि खल, तथा मशकके एक ही स्वभाव होते हैं। मशकको देखिये, प्रथम वह आपके कानोंमें मधुर शब्द सुनावेंगे, बाद पैर पर जागिरेंगे। पश्चात् आपके शोणित शोषणके उपायमें लग जायेंगे। बस इनको इसीप्रकार समझ लें। आप लोग यह न समझ बैठें कि धर्मादा, बिलसे केवल मठाधिपतियों या मन्दिराधिपतियोंकी ही हानि होगी, सनातन धर्मकी कुछ भी हानि नहीं हो सकती है। परन्तु ऐसा समझना भूल है। आप लोग सनातन धर्मावलम्बी यह निश्चय जानें कि यह आघात सनातन धर्मरूपी वृक्षके उस मार्मिक स्थान पर है कि-जिससे सनातन धर्मरूपी वृक्ष किसी न किसी प्रकारसे अपना पोषक

पदार्थ लेकर अपनेको पल्लवित रखना है। हम लोगोंको यह निश्चय जानना चाहिये कि-जिस समाजका धर्म नष्ट हो चुका, वह अपनेको कल्याणका भाजन कदापि नहीं बना सकता है। इसी तात्पर्य्यसे हमारे मुनियोंने कहा है कि-धर्म एव हतो हन्ति धर्मोरक्षति रक्षितः। तस्माद् धर्मोनहन्तव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत्॥ अर्थात् धर्म ही एक ऐसा वस्तु है जो मर करके भी मारता है, और रक्षित रह कर रक्षा करने वालोंकी रक्षा करता है। इस हेतु धर्म सबोंसे रक्षणीय है। जिससे धर्म मर करके हम लोगोंको नहीं मारे। और धर्मका लक्षण भी है कि-'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः सधर्मः, इससे निश्चय हो गया कि-धर्मकी रक्षा करनी अपनी ही रक्षा करनी है। अब आप लोग सनातन धर्मावलम्बी जरा ध्यान पूर्वक देखें कि-इस कराल कलिकाल प्रचण्डके प्रतापमें भी आपके कर्णोंको पवित्र करनेवाला तथा मानव शरीरको सफल बनानेवाला हरिनाम शब्द, तथा हरहर महादेव शब्द, तथा जयदुर्गे शब्द, तथा घड़ी घण्ट, विजय घण्ट, तथा शंखकी तुमुल ध्वनि यदि सुनेंगे तो मठ नामके छोटेसे छोटे झोपड़ेमें तथा छोटेसे छोटे मन्दिरोंमें ही चाहे उदर पूर्तिके निमित्त हो अथवा स्वकर्त्तव्य पालनके बुद्धिसे हो, परन्तु इन सुधारक पन्थियोंके गगन चुम्बी महलोंमें तथा आश्रमोंमें कदापि नहीं सुन सकते हैं। मेरे प्यारे सनातनियों आप लोग यह निश्चय जानें कि यदि इस संकटके समय में आप लोग सावधान नहीं होंगे तो कौंसिलमें उपस्थित किये हुये, धर्म नाशक बिलोंको विधर्मी अपने षड्यन्त्रके बल से अवश्य पास करा लेंगे तो शीघ्र ही आपके आगे वह दिन आजायगा कि इन मठ तथा मन्दिरोंमें जहां आज आप लोग अमृत ध्वनि सुनते हैं, तथा उस निराकार परमात्माके साकाररूपका दर्शन कर इस मानव शरीरको पवित्र करते हुये दोनों लोकको पुण्यमय बनाते हैं, वहां आपको राम नाम शब्द ध्वनिके स्थानमें हाफ पैन्ट, कोट, तथा चपरासोंसे लैस, नवयुवकोंके कण्ठरव सुननेको मिलेंगे, जहां आप परम पिता परमात्माकी मूर्तिका दर्शन लाभ करते हैं। वहां बड़े २ विधर्मी नेताओंका चित्रपट देखनेको मिलेंगे। आप लोग सनातन धर्मावलम्बी सज्जनोंको इस बातसे भी सावधान कर देना आवश्यक समझता हूँ कि-सुधारक पन्थियोंसे पेश किये हुये किसी भी कागजपर हस्ताक्षर पूर्णरूप से जांचपरताल कर करेंगे, नहीं तो आप ही का हस्ताक्षर सनातनधर्मका नाशक बन जायगा।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

निवेदक:—

अयोध्या झा वकील वेगूसराय — राम चरित्र शर्मा B. A. B. L.

हरनन्दन प्रसाद सिंह वकील वेगूसराय — सूर्य कान्त झा वकील वेगूसराय।

सूचना

जिन ग्राहकोंके पास चालू सालका दूसरा तीसरा अंक हो कार्यालयमें इन अंकोंकी आवश्यकता है जो अपना अंक भेजेंगे उनको इस अंकोंके बदलेमें जीवन निर्माणकला या पंचीकरण दिया जायगा।

पता—विश्वनाथ पत्र कार्यालय,
मोहल्ला ढुण्ढिराज गणेश बनारस सिटी।

शिवमहिम्न स्तोत्र—मय शिवकवच,शिवसहस्रनाम,भाषा-टीका सहित । सरल हिन्दी मूल्य लागतमात्र ॥)

महिम्नगान—इसमें श्लोकोंका यथावत छन्दोंमें अनुवाद है । अन्वय पदच्छेद-शब्दार्थ सब साथमें, सचित्र कीमत ।)

शिवपश्चामृत—इसे पढ़नेसे आप महिमामृत कीर्तनामृत,ध्यानामृत,अभ्यासामृत और [illegible] क्या रहस्य है वह अच्छी तरह ग्रहण कर सकते हैं । यदि आप पुराणोंके बिना पुराणोंका और वेदों का आनन्द लेना चाहें तो अवश्य पढ़ें । दाम ।)

शिवपूजा विधान—इसमें पूजन सामग्री पूजन विधि जप विधि, आदि सब उल्लेख है । दाम ।)

द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग महात्म्य—द्वादश ज्योतिर्लिङ्गके प्रगट होनेकी कथा और इन स्थानोंका पूर्ण विवरण विस्तार सहित है । दाम ~)॥

श्रीअन्नपूर्णा सहस्रनाम—यह अन्नपूर्णा कवचके अन्नपूर्णा सहस्रनाम स्तोत्र और प्रार्थना है । दाम ≈)

शिवसहस्रनाम—इसमें महर्षिमार्कण्डेय और श्रीकृष्णका सम्वाद है । यह कथा पद्मपुराणके उत्तर खण्डमें देखिये । दाम ~)॥

जीवन निर्माण कला - दाम ~)॥

शिवकवच—कवचके याने बख्तर जिस तरह बख्तर योद्धाकी रक्षा करता है उसी तरह यह [illegible] की पाठ मात्रसे रक्षा करता है । दाम~)॥

नोट—१ बहुत सी पुस्तक साथ मंगाने वालों को फायदा रहेगा । २ मनियार्डरसे रुपया भेजना अधिक लाभ दायक होगा ।
३ पूछ ताछके लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिये नहीं तो उत्तरके लिये वञ्चित रहेंगे ।

श्री पार्थिवेश्वर महादेव की सवारी ।

अहमदाबाद संन्यास आश्रममें कुछ महात्माओंने श्रावण मासमें श्रीपार्थिवेश्वर महादेव का पूजन बड़ी विधि-पूर्वक किया जिसके उपलक्षमें ता० १२।८।३८ के दिन बड़े समारोहके साथ श्री पार्थिवेश्वर महादेवकी सवारीनिकाली गई । सवारीमें हाथी घुड़सवार बाजा और ॐ नमः शिवाय बैंकके बोर्ड भी साथमें थे । जनताकी उपस्थिति भी अधिक तादातमें थी ।

विशेष महोत्सव

संन्यासाश्रममें ता० २९।८।३८ को बड़ी धूमधामसे विशेष महोत्सव मनाया गया, ब्रह्मचारी तथा विद्यार्थियोंने श्रीशंकरजी का रुद्राभिषेक वेद पाठ तथा हवनादि कार्य किया । दर्शकोंकी भीड़ काफी संख्यामें थी, और श्रीकृष्ण जन्मोत्सव बड़े समारोहके साथ मनाया गया, भजन करनेके लिये मैयाओंकी भजन मण्डली तथा गोमतीपुरकी भजन मण्डलियां आई थीं । गीता पाठ तथा भागवतकी कथा भी हुई । श्रीमान् पं० कल्पनाथजी 'व्याख्यान केसरी'के धार्मिक व्याख्यानसे जनतापर अच्छा प्रभाव पड़ा ।

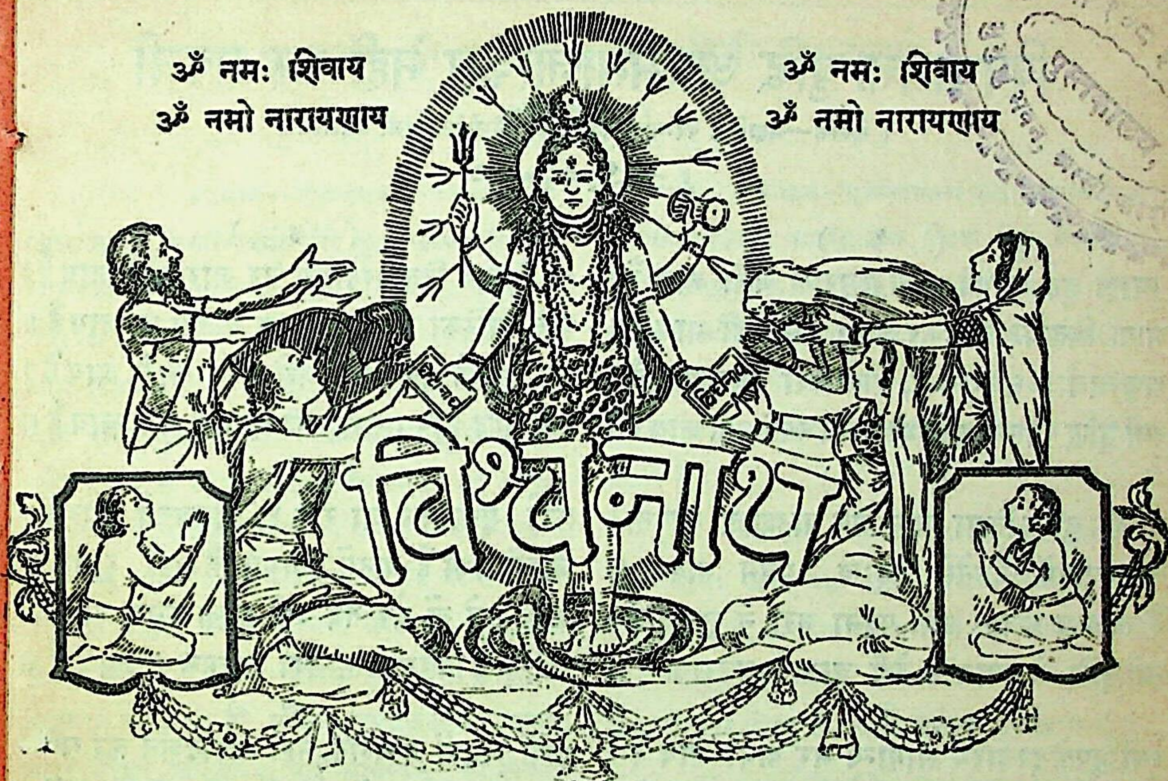
२४२ नं० की शाखामें समारोह

मु० सुकिया पोखरीमें ब्र० रामानंदजीके उत्साहसे श्री पार्थिवेश्वर महादेवकी सवारी निकाली गई, सवारीमें पार्थिवेश्वर महादेवकी पालकीमें ॐ नमः शिवाय मन्त्र तथा वेद भगवान् स्थापित थे । घुड़सवार, भजन मण्डलियां, बाजे आदि जनताकी अपार भीड़ थी ।

ॐ नमः शिवाय मंत्र ।

लिखना हमेशा चालू रहेगा । पारमार्थिक जगत कल्याणार्थ यह बैंक कभी बन्द नहीं हो सकता ।

ॐनमो विश्वस्वरूपाय, विश्वस्थित्यन्तहेतवे ।
विष्णवे विश्वनाथाय, विश्वेश्वराय ते नमः ॥



पुस्तक ४ } काशी, भाद्रपद १९९५ अगस्त १९३८ { अङ्क ७

नारायण स्वामीका उपदेश

रे मन, क्यों भटकत फिरे, भज श्रीनन्दकुमार।
'नारायण' अजहूं समुझ, भयो न कछू बिगार॥
लखी न छबि जिन श्यामकी,कियो न पलभर ध्यान।
'नारायण'ते जगत्में, प्रगटे निपट पषान॥
रूप छके झूमत रहें तनको तनक न ज्ञान।
'नारायण' दृग जल भरे, यही प्रेम पहचान॥
देह गेहकी सुधि नहीं, टूट गई जग-प्रीत।
'नारायण' गावत फिरै प्रेम भरे रस—गीत॥
प्रेम सहित गद्गद् गिरा, करत न मुखसों बात।
'नारायण' इक श्यामबिन, और न कछू सुहात॥

कबहुं हँसे रोवै कबहुं, नाचत कर गुणगान।
'नारायण' तन सुधि नहीं, लग्यो प्रेमको बान॥
जाके मनमें बस रही, मोहनकी मुसुकान।
'नारायण' ताके हिये, और न लागत ज्ञान॥
सुख सम्पति धनधामकी, ताहि न मनमें आस।
'नारायण' जाके हिये, हरिका प्रेम-प्रकास॥
'नारायण' तब जानिये, लगन लगी या काल।
जित तित ही दृष्टी पड़ै, दीखत मोहनलाल॥
परा भक्ति वाकों कहैं जित तित स्याम दिखात।
'नारायण'सो ज्ञान है पूरन ब्रह्म लखात॥

विषयासक्त बुद्धि आत्मसाक्षात्कार नहीं कर सकती

(लेखक—ब्रह्मनिष्ठ परमहंस स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी महाराज)



(१)

ब्याही हुई लड़की प्रथम ससुराल भेजी जाय है।
माता पिताको छोड़कर जाना उसे नहीं भाय है॥
सकुचाय है घबराय है, रोवे तथा चिल्लाय है।
त्यों बुद्धि विषयासक्त भी स्वस्वरूपमें नहीं जाय है॥

(२)

बालक युवक विद्या पढ़न जब पाठशाला जावता।
परतन्त्रतामें बैठनेसे दुःख मनमें पावता॥
है खेलना रुचता उसे, पढ़ना जरा न सुहाय है।
त्यों बुद्धि विषयासक्त तेरी आत्मसे घबराय है॥

(३)

ज्यों भूपके दरबारमें सामान्य नर कभी जाय है।
अनुचित न कुछ हो जाय ऐसा सोचकर घबराय है॥
निःशंक जा सकता नहीं, शंका अनेक उठाय है।
त्यों बुद्धि विषयासक्त तेरी आत्मसे भय खाय है॥

(४)

ज्यों चोर लेकर माल चोरीका छिपाकर भागता।
पीछे न आती दौड़ हो, यह सोचसे भय लागता॥
आगे कभी, पीछे चले, सीधा चला नहीं जाय है।
त्यों बुद्धि विषयासक्त तेरी आत्मसे घबराय है॥

(५)

व्यभिचार हित परदारके घर जार कोई जाय है।
पति नारिका घरमें अचानक बाह्यसे आ जाय है॥
तब जारके मन माहिं जैसे क्षोभ भारी आय है।
त्यों बुद्धि विषयासक्त तेरी आत्मसे भय खाय है॥

(६)

कोई मुसाफिर जा रहा है, बालबच्चे साथमें।
जोखों बंधी है गांठमें हथियार है नहीं हाथमें॥
डाकू उसे लें घेर तब ज्यों दहल मनमें जाय है।
त्यों बुद्धि विषयासक्त तेरी आत्मसे दहलाय है॥

(७)

पापी अधर्मी जन्मशत, नहीं आत्मदर्शन कर सकें।
सुखशान्ति भी पाते नहीं संसारसे नहिं तर सकें॥
जब बुद्धि निर्मल होय है तब आत्मरस चख पाय है।
आत्मानुरागी तज विषय, संसारसे तर जाय है॥

(८)

जब बुद्धि जाती है बिगड़, सब ही बिगड़ तब जाय है।
जब बुद्धि होती शुद्ध है, तब शुद्ध सब हो जाय है॥
होवे विकार विदाय सब तब बुद्धि होवे शुद्धतम।
तब बोधमात्र स्वरूप हो पदपाय सच्चितशांत सम॥

सहजो बाईके उद्गार

सहजो गुरु दीपक दियो, नैना भये अनन्त।
आदि अन्त मध एक ही, सूझ पड़े भगवन्त॥
मैं अखण्ड व्यापक सकल सहज रहा भरपूर।
ज्ञानी पावे निकट ही, मूरख जानै दूर॥

जोगी पावे जोगसूं, ज्ञानी लहै विचार।
सहजो पावै भक्तिसूं, जाके प्रेम अधार॥
सील छिमा सन्तोष गहि, पांचो इन्द्रीजीत।
राम नाम ले सहजिया, मुक्ति होन की रीत॥



पूज्यपाद श्री स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराजके
सदुपदेश

(१) यतमान—'वैराग्यमान्द्यं यतमानसंज्ञम्' जिस समय विषय-पंकमें फंसे हुए चित्तके विषयानुरागको नष्ट करनेका प्रयत्न उत्पन्न होता है, "विषय नित्य हैं या अनित्य हैं विषय-भोगका परिणाम सुखमय है या दुःखमय है", इत्यादि आलोचना द्वारा विषमय विषय-भोगकी प्रवृत्तिमें दोष दृष्टि एवं सुख कामनासे सत्कर्मकरनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा हो जाती है, उस समय 'यतमान' नामके मन्द वैराग्य का श्रीगणेश होता है। यह वैराग्यका अंकुर यानी प्रथमा है। इस कक्षामें प्रविष्ट साधक वैराग्यके महत्त्वको समझ सकता है। उसे निश्चय हो जाता है कि—एकमात्र वैराग्यसे ही जीवन, उपद्रवशून्य, शान्त, मधुर, दिव्य, मंगलमय, एवं आनन्दमय हो सकता है, विषय-भोगका परिणाम अनन्त दुःखप्रद है और विषयत्यागका परिणाम अनन्त सुखप्रद है। अतएव उसे जगत्के विषय-भोगजन्य सुखके प्रति, एवं ऐश्वर्यके प्रति घृणा हो जाती है, भोग-ऐश्वर्य तनिक भी अच्छे नहीं लगते, किन्तु निरस, सारशून्य, एवं तुच्छ प्रतीत होते हैं, इसलिये वह विषय-भोगोंसे दूर रहकर, उनको चित्तसे हटानेके लिये एवं अध्यात्मतत्त्वकी ओर चित्तको लगानेके लिए एकान्त-देशमें निवास करना चाहता है।

(२) व्यतिरेक—'क्वचिद्विरागो व्यतिरेक संज्ञम्' एकान्त-देशमें बैठकर जिससमय यह देखनेका प्रयत्न करता है कि—चित्तसे किस विषयका राग निवृत्त हुआ है, या किस विषयका राग अबतक वर्तमान है, इत्यादि परीक्षा द्वारा जब विद्यमान विषय-रागोंको दग्ध करनेकी चेष्टा करता है, तब यह 'व्यतिरेक' नामका वैराग्य कहलाता है।

(३) एकेन्द्रिय—'एकेन्द्रियाख्यं हृदि रागसौक्ष्म्यम्' पूर्वोक्त प्रकारसे क्रमशः जब चित्त फिर किसी भी विषयमें अनुरक्त या आसक्त नहीं होता, परन्तु बीच बीचमें थोड़ा बहुत या अत्यल्प सूक्ष्मरूपसे उत्सुकतामात्र, विषयराग, हृदयमें उत्पन्न हो जाता है, तब उस अवस्थाको 'एकेन्द्रिय' नामका वैराग्य कहते हैं।

(४) वशीकार—'तस्याऽप्यभावस्तु वशीकृताख्यम्' शनैः शनैः जब यह उत्सुकतामात्र-सूक्ष्मराग भी नहीं रहता है, अर्थात् विषयानुरागके संस्कार भी जब विलुप्त हो जाते हैं, तब वशीकार नामक वैराग्य प्राप्त होता है। यही वैराग्य सर्वोत्तम है।

महर्षि पतञ्जलिजीने भी योग शास्त्रमें इस वैराग्यका उल्लेख किया है—

'दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञावैराग्यम्'।
(समाधिपाद० १५)

स्रक्चन्दनवनितादि दृष्ट, और शास्त्र प्रतिपादित अप्सरा, नन्दनवन आदि अदृष्ट, दोनों प्रकारके विषय-भोगोंकी लालसासे जब चित्त पूर्णरूपसे निःस्पृह हो जाता है, तब 'वशीकार' नामक वैराग्य उत्पन्न होता है।

× × ×

आचार्यशंकर स्वामीने कहा है—

सर्वपरिग्रह भोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः (च० पं)

स्त्री, धन, पुत्रादि सभी परिग्रहोंका तथा विषय भोगासक्तिका परित्याग, किस विराग-रसिक, त्यागी पुरुषके हृदयमें दिव्य-आनन्दका आविर्भाव नहीं करता ?

गरुड़ पुराणमें सूतजीने भी शौनकके प्रति कहा है—

रागद्वेषादियुक्तानां न सुखं कुत्रचिद् द्विज !।
विचार्य खलु पश्यामि, तत्सुखं यत्र निर्वृत्तिः ॥
यत्र स्नेहो भयं तत्र, स्नेहो दुःखस्य भाजनम्।
स्नेहमूलानि दुःखानि, तस्मिंस्त्यक्ते महत्सुखम् ॥

(पूर्व० ११३)

अर्थ-जो लोग संसारकी अनित्य-वस्तुओंसे सुख-प्राप्तिकी अभिलाषा रखते हैं, राग, द्वेष, आदि अनर्थोंके द्वारा सदा अभिभूत होते हैं, तथा, पुत्र, कलत्र, धन, मान, प्रतिष्ठा, आदिमें अनुरक्त रहते हैं, उन्हें किसी भी प्रकारसे सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। हे शौनक ! मैंने खूब विचार करके देखा है कि—जिसका चित्त विषय तृष्णासे निवृत्त हो कर शान्तिसे लबालब भरा है, उसे ही वास्तविक सुख प्राप्त होता है। जिसे किसी भी वस्तुमें या स्वजनमें अधिक स्नेह है, उसे सदा भय लगा रहता है, अतः स्नेह ही दुःखका खजाना है, संसारके सभी दुःख, स्नेहसे ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये स्नेहके परित्यागसे ही महान् दिव्य सुख प्राप्त होता है।

[क्रमशः]

उन्मत्तोंका विनोद

(लेखक—परमहंसब्रह्मनिष्ठ स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी महाराज)

पूर्व प्रकाशितसे आगे—

उसके न जाननेसे ही भेद और भय है, उसके जानते ही न भेद रहता है, न भय रहता है किन्तु उस का जानने वाला निर्भय, निःशंक, निर्मोह, निःशोक, निश्चिन्त और निर्द्वन्द हो जाता है।

जब गीताका अर्थ 'सबका आत्मा ब्रह्म' ऐसा है, तो सब गीता पढ़कर कृतार्थ क्यों नहीं हो जाते। सब कृतार्थ हैं ही, किसी पूर्वके प्रतिबन्धसे उनको ऐसा अनुभव नहीं होता, जब कुछ काल तक गीताका पाठ करेंगे, उसका अर्थ समझेंगे, ईश्वरार्पण बुद्धिसे कर्म करेंगे, तब उनके ऊपर केशव मुरारी, माधव मुरारी, गोविन्द गोकुल बिहारीका प्रसाद हो जायगा, पार्थके सखा, सारथीका प्रसाद होते ही, वे 'मन्मनाभव मद्भक्त' इसके अनुसार सगुण ब्रह्मकी स्वधर्मसे आराधना करके और पीछे 'सर्वधर्मान्परित्यज्य' के अनुसार शुद्ध, चिन्मात्र, आनन्दैकरस ब्रह्मात्माकी शरण लेकर गीताके अर्थ स्वस्वरूप ब्रह्मका साक्षात्कार करके कृतार्थ हो जावेंगे, क्षणभर भी नहीं लगेगा !

भोला ! उन्मत्तोंका विनोद सुना ! भाई ! ये तो न मालूम उन्मत्त हैं या विद्वद्वरिष्ठ हैं उनकी वेही जान सकते हैं, दूसरा नहीं जान सकता ! उनकी वातोंसे ऐसा अनुमान होता है कि-ये आत्मानन्दका अद्भुत रसामृत का स्वाद लेरहे हैं, परन्तु उनके रसामृतसे तेरा मुखतो मीठा नहीं हो सकता ! यदि तू उनका अनुकरण करना चाहे, तो यहभी नहीं हो सकता ! कहां राजा भोज कहां कांगडा तेली ! कहाँ ये आकाशमें उड़ने वाले कहां तू, तू तो अभी पृथ्वीपर भी विना ठोकर खाये नहीं बच सकता, उनको तो सर्व शब्दोंका एक अर्थ अथवा सर्व शब्दोंका सर्व अर्थ करने दे, तू तो नित्य प्रति गीताका पाठ किया कर अथवा यह भी न कर सके तो नीचे लिखे गीता सारका ही पाठ किया कर, उतनेसे ही यदि अच्युत प्रेमी प्रसन्न होगये, तो समझ लेना कि अच्युत भगवान् तुझसे प्रसन्न होगये ! जहां अच्युत भगवान् का प्रसाद प्राप्त हुआ कि-सर्व प्राप्त हुआ !

गीतासार

हरिगीत छन्द

(१)

निजधर्म में तत्पर रहे, पर धर्म तजना चाहिये।
सब कर्म करके कृष्ण अर्पण, कृष्ण भजना चाहिये॥
करता कराता ईश है, निश्चय समझना चाहिये।
कर्ता स्वयं बन कर्म में, फिर क्यों उलझना चाहिये॥

(२)

कृष्णार्थ खाना चाहिये, कृष्णार्थ पीना चाहिये।
कृष्णार्थ मरना चाहिये, कृष्णार्थ जीना चाहिये॥
जीना जहां सीना तहां, फिर क्यों न सीना चाहिये।
मोटा नहीं भद्दा नहीं, अति सूक्ष्म सीना चाहिये॥

(३)

मन इन्द्रियां सब जीत, निज उद्धार करना चाहिये।
डूबे हुए इस आपका, उपकार करना चाहिये॥
भव सिंधु में से काढ़ कर, भव पार करना चाहिये।
हरिभक्ति सद्गुरु वाक्य, कर्णाधार करना चाहिये॥

(४)

नर देह पा दुर्लभ्य भोगों, में न फँसना चाहिये।
चढ़ मेरु गिरि भव कूप दलदल, में न फँसना चाहिये॥
संसारियों का संग तज, एकान्त वसना चाहिये।
हिमवान आदिक द्वन्द्व सह कर, देह कसना चाहिये॥

(५)

शम दम तितिक्षा आदि करके, शान्त होना चाहिये।
अभ्यास करि वैराग्य करि, मन शान्त होना चाहिये॥
सब भेद तज, एकत्व भज, दुःखान्त होना चाहिये।
है वहम केवल सत्य यह, सिद्धान्त होना चाहिये॥

(६)

कांक्षा न करना चाहिये, ना सोच करना चाहिये।
संपत्ति में आपत्ति में, सम धैर्य धरना चाहिये॥
नाहिं अमर मर हो सके, क्यों व्यर्थ जलना चाहिये।
मर भी अमर ना हो सके, फिर क्यों उछलना चाहिये॥

(७)

क्या मर्म कर्म अकर्म का, पहिचान लेना चाहिये।
जो है उभय से पर उसे, भी जान लेना चाहिये॥
मन बुद्धि उसमें जोड़ कर, तज भ्रान्ति देना चाहिये।
सर्वस्व अपना अर्प कर, सुख शान्ति लेना चाहिये॥

(८)

सब ब्रह्म है तो सर्व को ही, प्यार करना चाहिये।
ना वैर ईर्षा द्वेष नाहीं, रार करना चाहिये॥
इस देह के निर्वाह हित, व्यापार करना चाहिये।
निरपेक्ष ज्यों व्यासादि, शिष्टाचार करना चाहिये॥

(९)

सब ब्रह्म है, तो सर्व में ही, ब्रह्म रहना चाहिये।
मैं अन्य हूँ, यह अन्य है, क्यों भेद रखना चाहिये॥
कर वृत्ति ब्रह्माकार ब्रह्मानन्द, कहना चाहिये।
ना कल्पना कर अन्य, आत्मानन्द रहना चाहिये॥

(१०)

ब्रह्मात्म अनुसन्धानकर, अच्युत होना चाहिये।
सुतदार में आसक्त हो, हँसना न रोना चाहिये॥
तल्लीन होकर ब्रह्म में, तद्रूप होना चाहिये।
निर्द्वन्द्व हो, निःशंक हो, सुख नींद सोना चाहिये॥

(११)

सब धर्म भोला! त्याग अब, कठपुतलि बनना चाहिये। जैसे नचावे सारथी, वैसे हि नचना चाहिये॥
हरि गुण गवावे कृष्ण तो, गुण-गान करना चाहिये। निज ध्यान धरने को कहे, तो ध्यान धरना चाहिये॥



सुगम साधन

(लेखक—श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ऋषिकेष)

अविद्याके आवरण द्वारा आच्छादित होनेके कारण ही तुम अपने नित्य, शुद्ध, मुक्त, परम, सच्चिदानन्द स्वरूपको भूल गये हो। उस अपनी खोई हुई ईश्वरीय दैवी सत्ताको फिर प्राप्त करनेके लिए तुमको संसारका त्याग करना अथवा हिमालयकी गुफाओंमें चला जाना ही नितान्त आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त और भी एक सुगम साधन है, जिसके द्वारा तुम संसारमें रहते हुए तथा संसारिक जीवन व्यतीत करते हुए भी, निस्सन्देह परमात्म-ज्ञान का अनुभव प्राप्त कर सकते हो।

यह आवश्यक नहीं है कि-तुम्हारे पास ध्यानके लिये कोई अलग कमरा हो अथवा कोई विशेष समय ध्यानके लिये नियत किया जावे। प्रत्येक घण्टेमें एक अथवा दो मिनिटको अपनी आंखें बन्द करके परमात्माका तथा उसकी नाना प्रकारकी दैवी गुण-सम्पदाका ध्यान करो। उदाहरणार्थ उसकी दया, प्रेम, आनन्द, ज्ञान, पवित्रता, पूर्णता इत्यादिका स्मरण करो। और इसीप्रकार काम करते हुए भी "हरि-ओम्", "श्रीराम", 'राम राम", "शिव शिव", "कृष्ण कृष्ण" अथवा और किसी मन्त्रका जो तुम्हारी रुचिके अनुकूल हो, मानसिक जप करते रहो।

यह साधन-रात्रिमें भी जब भी कभी तुम किसी कारणसे जाग जाओ-करना चाहिये। यद्यपि तुमको नींदसे उठनेकी आदत नहीं है, तो भी तुमको यह अभ्यास कभी कभी जब तुम करवट वदलो—करना चाहिये। ऐसा करनेकी आदत केवल बारबार अभ्यास करनेसे होगी।

सर्वदा इस बातका अनुभव करो कि-तुम्हारा शरीर एक चलता फिरता ईश्वरका मन्दिर है, यही तुम्हारा दफ्तर तथा कार्यग्रह है। यही एक बड़ा शिवालय अथवा बृन्दावन है। और तुम्हारा प्रत्येक कार्य जैसे कि—चलना, भोजन करना, श्वासलेना, देखना, सुनना, तथा पढ़ना इत्यादि सब ही ईश्वरके पूजनार्थ सामग्री अथवा यज्ञ-आहुतियां हैं। यथार्थ धर्म एवं न्याय द्वारा सम्पादित कर्म ही ईश्वरकी पूजा है।

आशा ममताको त्यागकर निष्काम भावसे धर्मार्थ अथवा परोपकारार्थ कार्य करो, और इस विचारको भी त्यागदो कि—मैं कर्त्ता तथा भोक्ता हूँ। अपनेको सर्वदा ईश्वरके हाथका एक खिलौना समझो और ध्यान रक्खो कि—वह तुम्हारे द्वारा अपना ही कार्य करवाता है। इस संसारको ईश्वरका व्यक्तरूप अथवा विश्व बृन्दावन समझो और अपने बच्चों, स्त्री, माता, पिता तथा दूसरे सम्बन्धियोंको ही अनेक रूप अथवा उसकी सन्तान समझो। हर रूपमें हर वस्तुमें प्रभुका दर्शन करो। यदि तुम दीर्घकाल तक निरन्तर इस परिवर्तित दृष्टिकोण की उन्नति करने तथा अपनेमें इस प्रकार का ईश्वरीय भाव उत्पन्न करनेमें सफल हो गये तो तुम्हारे समस्त कार्य ईश्वरके प्रति तुम्हारी पूजा अर्चना होंगे। इतना ही काफी है। तुमको शीघ्र ही ईश्वरका अपरोक्ष ज्ञान हो जावेगा यह कर्मयोग है। यह एक सुगम साधन है। इसके पश्चात् फिर यह न कहना कि—स्वामीजी मुझे ईश्वर प्राप्तिके साधनार्थ समय नहीं मिलता। यदि तुमने इस कर्मयोग का केवल तीन मास तक भी आचरण कर लिया तो तुम सर्वथा नये प्राणी बन जाओगे तुम्हारा शारीरिक मानसिक तथा आत्मिक कायाकल्प हो जावेगा। इसीक्षणसे समस्त प्राणियों—चींटी, कुत्ता, हाथी, चीता, मुसलमान, हिन्दू, ईसाईके साथ अपनी अभिन्न एकता तथा सम्बन्ध प्रतीत करना आरम्भ करदो। भिन्नता केवल ऊपरी नाम तथा रूपमें है। ईश्वर तथा सगुण ब्रह्मके

ही ये सब भिन्न-भिन्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं। जब भी तुम किसी वृक्ष अथवा छोटी झाड़ी या एक सिक्ख अथवा मुसलमानको देखो तो सर्वदा उनके बाहरी रूपके पीछे एकही ज्ञानघन आत्माका दर्शनकर उद्योग करो। यदि तुम कुछ कालतक ऐसा करोगे तो तुमको एक अवर्णनीय आनन्दका अनुभव होगा। ईर्षा और द्वेष तुमसे दूर भाग जावेंगे। तुममें विश्व-प्रेम तथा आत्म ऐक्यताकी वृद्धि होगी। तुमको एक बहुत बड़े सत्यका रहस्य खुल जावेगा।

प्रतिदिन आधा अथवा एक घण्टा अपनी कापीमें बिना हिले-जुले मौन रहकर अपना इष्टमन्त्र लिखा करो। निम्नलिखित शीर्षकोंको मोटे मोटे सुन्दर अक्षरोंमें लिखकर अपने खाने, सोने, उठने, बैठने तथा और स्थानोंपर लगादो। "सत्य बोलो" "ओम् पुरुषार्थ" "ओम् पवित्रता" "मैं अवश्यअवश्य ईश्वर ज्ञान प्राप्त करूँगा", "समय बहुत अमूल्य है", "ब्रह्मचर्य दैवी जीवन है", "मैं स्वयं दया, पवित्रता, प्रेम, संतोष, तथा पुरुषार्थकी मूर्ती हूँ"। इनमेंसे कुछ लिखकर अपनी जेब तथा डायरीमें भी रक्खो यह अपनेमें एश्वर्य गुण उत्पन्न करनेका एक सुगम मार्ग है। तुममें यहांपर कुछ मन्त्र तथा सिद्ध प्रयोग आत्मनिवेदन तथा शरणागति भाव उत्पन्न करनेके प्रयोजनसे लिखे जाते हैं। प्रतिदिन श्रद्धामात्रसे उनका मानसिक जप तथा स्मरण किया करो—'ए प्रभु मैं तेरा हूँ। सब कुछ तेरा है। तेरी ही इच्छाके अनुसार होगा। तू ही सबकुछ है। तू ही सबकुछ कर्ता है' इस अभ्याससे अहंता, ममता तथा कार्यकर्ता तथा भोक्तापनेका अभ्यास नष्ट हो जावेगा।

॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

शब्द मार्ग और साधन

(लेखक—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी एकरसानन्दजी सरस्वती)

ऋग्वेदके "नासदीय" सूक्तके अनुसार परमात्मा सृष्टिके आदि कालमें निराकार, निर्गुण, अव्यक्त शब्द रहित, अकेला, द्वैतके गंधसे रहित था, जो परमात्मा शब्द रहित था, उसने एक शब्दका उच्चारण किया, उस एक ही शब्दसे जड़चेतन सभी संसार और सभी शरीर प्राण, अपान, और दृश्य मात्र जगत् उत्पन्न हुआ। शरीरसे शब्द निकलते ही प्राण और अपना निकल जाते हैं, और मनुष्य मृतक हो जाता है। शब्द के विना कोई भी शरीर जीवित नहीं रह सकता। शब्दके विना शरीर दो घड़ीमें ही सड़ जाता है। पृथ्वी भरके सभी शरीरोंमें तथा चतुर्दश भुवनोंमें यह शब्द गर्जना कर रहा है। इस गर्जनाको योगीया सत्संगी लोगही जान सकते हैं। दुसरे नहीं। इस शब्दकी महिमा योगेंद्र गोरक्षनाथजीने नीचेके श्लोकोंमें कही है।

अनया सदृशी विद्या, अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं, न भूतं न भविष्यति ॥
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्ष दायिनी।
अस्याः स्मरण मात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥

अर्थ—इस शब्दके तुल्य कोई विद्या नहीं, इस शब्दके तुल्य कोई अनुभव करानेवाला जप नहीं; इस शब्दके तुल्य जीव ईश्वरका अभेद ज्ञान बतलाने वाला सुगम साधन है नहीं, इस शब्दके तुल्य दिव्य दृष्टि करानेवाला साधन भूतकाल और भविष्य कालमें भी न हुआ है और न होगा। अजपा नामकी गायत्री योगियोंको मोक्ष देनेवाली है, इसके स्मरण मात्रसे ही साधक जीवन्मुक्त हो जाते हैं। इस मूल शब्दके नाम बहुत है, जैसे निज नाम, सतशब्द, आदि नाम, अजपा गायत्री, गुप्त गायत्री, राम नाम, इत्यादि।

इस मूल शब्दको राम नाम इस कारणसे कहते हैं कि-यह शब्द सब शरीरोंमें रम रहा है। कबीरने भी नीचे के शब्दोंमें अपना अनुभव कहा है—

शब्द बिना साधु नहीं,
द्रव्य बिना नहीं शाह।

अर्थ—जिस साहुकारके पास धन नहीं है, उसको कोई भी शाह नहीं कह सकता। वैसे ही जो साधु हो कर भी शब्द का अभ्यास नहीं करता। या नाना प्रकारकी शब्दकी शक्तियों को नहीं जानता, वह साधु कहलानेके योग्य नहीं। शुकदेव योगेन्द्रने और चरण दासजीने भी शब्दकी महिमा नीचेके दोहोंमें कही है—

सब योगन का योग है, सब ज्ञानन का ज्ञान।
सर्व सिद्धि की सिद्धि हैं, तत्त्व स्वरन का ध्यान॥
ब्रह्म ज्ञान का जाप है, अजपा सोहम् साध।
परमहंस सोई जानिये, जाका मता अगाध॥

कबीरने शब्दकी महिमा नीचेके दोहोंमें कही है—

एक शब्द गुरु देवका, जाका अनन्त विचार।
पण्डित थाके मुनि जना, वेद न पावे पार॥
मैं कलिका कुतवाल हूँ, लेहु शब्द हमार।
जो जाने या शब्द को, सो उतरे भव पार॥

शब्दमार्गी जो सन्त हुये हैं, उन्होंने भी शब्द की महिमा कही है—

शब्द सुई सुरती का धागा, काया कन्था लाय।
दादू योगि युग युग जीवे, कभी न फाटी जाय॥
स्वर श्वासा काबू में आवे,
पर काया में जाय समावे।
विक्रम आदि यही मत लीना,
अब हूँ गुप्त बहुत परवीना॥
निरंजन नाम जपो लवलाई,
जाके जपे काल नहिं खाई।
शब्द शब्द बहु अन्तरा,
सार शब्द चित देह।
जिन शब्द साहेब मिले,
सोई शब्द गहि लेय॥

चवदा अख ज्ञान हम भाखा, सारशब्द न्यारा ही राखा॥

शब्द मार्गके साधन

सूक्ष्म भोजन खाइये, रहिये ना पड़ सोय।
जल थोड़ोसो पीजिये, बहुत बोल मत खोय॥
चारों समय साधकर, श्वासा युक्ति चलाय।
अकाल मृत्यु आवे नहीं, भोगे पुरी आय॥
सुमरण सुरत लगाय के मुखसे कछु न बोल।
बाहर के पट देय के, अन्दर के पट खोल॥
शब्दही कुंजी शब्दही ताला, शब्दे शब्द हुवा उजियाला।
जो शब्द का जाने भेद, आप ही कर्ता आप ही देव॥
दिनको हरि स्मरण करो, रैन जाग कर ध्यान।
भूख राख भोजन करो, तज सोवन की बान॥
जात हमारी ब्रह्म है, माता पिता है राम।
घर हमारा शून्य में, अनहद में विश्राम॥
जग त्यागो वैराग ले, निश्चय मन को लाव।
आठ पहर साठों घड़ी, सुमरण सुरत लगाव॥
सबसू रहो निर्वैरता, गहो दीनता ध्यान।
अन्त मुक्ति पद पाइहौं, जगमें होय न हान॥
दया नम्रता दीनता, क्षमा शील सन्तोष।
इनको ले सुमरण करे, निश्चय पावे मोक्ष॥

शब्द मार्गी सन्तोंने शब्दकी महिमा शब्दकी अनन्त शक्तियां प्रत्यक्ष देखीं है यह शब्द मार्ग वैदिक है, इस मार्गकी महिमा अथर्व वेदके हंसोपनिषदमें खूब लिखी है, शुक योगेन्द्र भी कहते हैं—

शब्द ब्रह्म-परब्रह्म, भली विधि जानीये।
पांच तत्त्व-गुण तीन, सो मिथ्या जानीये॥
पांचो मुद्रा योग बल, दसवें काढे प्राण।
मिला ज्योतिमें ज्योति हो, यह सायुज्य पिछान॥
अंदर लगी कर्मकी टाटी, दसों दिशा सुरतजा फाटी।
टारा टुरीमें दिन बीता, कहें कबीर वह रह गया रीता
सुरती माहीं जप करे तन सुं न्यारो जौन।
मिले सच्चिदानन्द में, गहे रहे जो मौन॥

संक्षेप-शारीरकम्

पूर्व प्रकाशितसे आगे

शक्त्यन्तराभावादज्ञानान्तरमेवाज्ञानसाधकमुपेयम् एवञ्चानवस्थेत्याशङ्क्य परदृष्ट्यैव दृष्टान्तान्तरमाह—

अभाव होनेसे अज्ञानका साधक अन्य अज्ञान मानना चाहिये, इसप्रकार उस अन्य अज्ञानका साधक भी अन्य अज्ञान माननेपर अनवस्था दोष हो जायगा ?

समाधान—नैयायिक आदिके मतसे अन्य दृष्टान्त, समाधानके लिए श्लोकसे कहते हैं—

भेदं च भेद्यं च भिनत्ति भेदो, यथैव भेदान्तरमन्तरेण।
मोहं च कार्यं च बिभर्ति मोहस्तथैव मोहान्तरमन्तरेण ॥५५॥

जैसे भेद, (अन्योऽन्याभाव) घटपटरूप (अनुयोगि-प्रतियोगी) भेद्यको भिन्न करता हुआ, अन्य-भेदके विना घटादिभेद्यसे अपने (भेद) को भी भिन्न करता है, तैसेही अज्ञान भी अन्य-अज्ञानके विनाही द्वैतप्रपञ्चरूप कार्य की तथा अपनी (अज्ञानकी) भी कल्पना करता है ॥ ५५ ॥

भेदं चेति। यथैव हि भेदः=अन्योऽन्याभावो भेद्यं=घटपटादिकं मिथो भिन्नं बोधयति, आत्मानमपि भेदं घटादेर्भेद्यात्सकाशाद्भिनत्ति, न तु स्वप्रतियोगिकं भेदान्तरमपेक्षते अनवस्थानात्। तथा मोहोऽपि मोहान्तरं विना मोहं तत्कार्यं च कल्पयतीत्यर्थः ॥५५॥

जैसे भेद यानी अन्योऽन्याभाव, भेद्य (भिन्न करने योग्य) घटपटको परस्पर भिन्न बोधन करता है, और अपने-आप भेदको भी भेद्य घटादिकोंसे भिन्न करता है, अनवस्था दोष होनेके कारण भेद प्रतियोगिक अन्य-भेदकी अपेक्षा नहीं करता है। तैसे मोह (अज्ञान) भी अन्यमोहके विना मोह और मोह-कार्य (द्वैतप्रपञ्च) की भी कल्पना करता है ॥ ५५ ॥

एवं भाष्योक्ते बन्धमिथ्यात्वे साधिते, यदि शास्त्रारम्भोपोद्घाते आद्यावध्यासः, किमिति सूत्रकृतोपेक्षित इत्याशङ्क्य "सूत्रेष्वेवहि तत्सर्वम्" इति न्यायादसौत्रस्य भाष्यविषयत्वायोगादर्थगत्या सूत्रित एवेत्याह—

शंका—इसप्रकार भाष्यमें कहा हुआ बन्धका मिथ्यात्व सिद्ध करने पर, यदि शारीरक मीमांसा-शास्त्रके आरम्भके आदि उपोद्घात* में अध्यासका वर्णन है, तो सूत्रकार भगवान् वेदव्यासजीने अध्यासकी उपेक्षा क्यों की ?

समाधान—'भाष्यका समस्त अर्थ, सूत्रोंमें ही विद्यमान रहता है' इस नियमसे भाष्यका प्रतिपाद्य विषय सूत्रके बहिर्भूत नहीं हो सकता है, अतएव अध्यास भी अर्थापत्तिपद्धत्तिसे सूत्रोंमें ही प्रतिपादित है, यह कहते हैं—

* 'प्रकृतचिन्तासिद्ध्यर्थं उपोद्घातं विदुर्बुधाः।' प्रकृत विषयकी सिद्धिके लिए जो कुछ कहा जाता है, उसे उपोद्घात कहते हैं।

ब्रह्मज्ञानं सूत्रयन् सूत्रकारो बन्धोत्पत्तेर्हेतुविध्वंसनाय ।
एतत्सर्वं सूचयामास तस्मादेतत्सर्वं भाषते भाष्यकारः ॥५६॥

संसाररूप बन्धकी उत्पत्तिका कारण अज्ञानके विध्वंस करनेके लिए सूत्रकार भगवान् बादरायणने 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस सूत्रसे ब्रह्मज्ञानका प्रतिपादन करते हुए अध्यास आदि समस्त प्रतिपाद्य विषयकी अर्थापत्तिसे सूचना किया है, अतएव भाष्यकार भगवान् शंकर स्वामी अध्यास आदिका वर्णन करते हैं ॥५६॥

ब्रह्मज्ञानमिति । 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इति मुमुक्षोर्ब्रह्मजिज्ञासोपदेशादधिकारिविशेषणस्य मोक्षस्य बन्धहेत्वज्ञानध्वंसात्मकस्य ब्रह्मज्ञानं साधकमिति सूत्रयन्, बन्धस्य सत्यत्वे ज्ञाननिवर्त्यत्वानुपपत्तेः, एतत्सर्वं पूर्वोक्ताध्याससाधनप्रबन्धं मुनिः सूचयामासेत्यर्थः । तेन नासूत्रितार्थवर्णनं भाष्यकृत इत्याह—तस्मादिति ।

ननु—ज्ञानमध्यस्तस्यैव निवर्त्तकमिति नायं नियमः, पूर्वज्ञानस्योत्तरज्ञानेन, इच्छायाः स्वविषयज्ञानेन, शोकस्य सुहृद्दर्शनेन, पापस्य सेतुदर्शनेन, विषस्य गरुड़ध्यानेन, प्रवृत्तिप्रागभावस्य प्रवर्त्तकज्ञानेन, निवृत्तिदर्शनादिति चेन्न। तत्त्वज्ञानत्वेन निवर्त्तकत्वस्य विवक्षितत्वात् । उत्तरज्ञानादेस्तु विरोधिगुणत्वेन, विषयसिद्धित्वेन सुहृज्ज्ञानत्वेन, विहितक्रियात्वेन, प्रवृत्तिसाम-

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस सूत्रसे मुमुक्षुके प्रति ब्रह्मजिज्ञासाका उपदेश किया है । ब्रह्मज्ञानके अधिकारी मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छावाला) में संसाररूप बन्धका कारण अज्ञानकी निवृत्तिरूप मोक्ष विशेषण है मोक्षका साधक ब्रह्मज्ञान है, यह सूत्रसे प्रतिपादित है अज्ञान सहित संसाररूपबन्ध यदि सत्य है, तो वह ज्ञानसे निवर्त्य नहीं हो सकता है, अतः पूर्वोक्त अध्यासके साधक समस्त विषयको मुनि बादरायणने, सूचित किया है । इसलिये सूत्रसे बहिर्भूत विषयका वर्णन भाष्यकारने नहीं किया है, यह कहते हैं—तस्मादिति ।

शंका—'ज्ञान अध्यस्तका ही निवर्त्तक है' यह नियम नहीं है, क्योंकि उत्तरज्ञानसे पूर्वज्ञानकी, इच्छाके विषयरूप ज्ञानसे, ज्ञान-विषयक इच्छाकी, प्रिय—मित्रके दर्शनसे शोककी, सेतुके दर्शनसे पापकी, गरुड़के ध्यानसे विषकी, प्रवृत्तिके उत्पादक ज्ञानसे प्रवृत्ति प्रागभावकी निवृत्ति देखी गई है, परन्तु पूर्वज्ञान आदि अध्यस्त नहीं हैं ?

समाधान—तत्त्वज्ञानत्वरूपसे ही तत्त्वज्ञान अध्यस्तका निवर्त्तक है, यानी अध्यस्तनिष्ठ निर्वर्त्यता निरूपित निवर्तकताका अवच्छेदक तत्त्वज्ञानत्व विवक्षित है। उत्तरज्ञान विरोधी—गुणत्वसे, इच्छाज्ञान—विषयसिद्धित्वसे, सुहृद्दर्शन सुहृज्ज्ञानत्वसे, सेतु—दर्शन एवं गरुड़ ध्यान विहित क्रियात्वसे, प्रवर्तक—ज्ञान प्रवृत्तिकी इष्टसाधनत्वादिक सामग्रीपनेसे, यथा योग्य क्रमशः पूर्वज्ञानके

ज्ञत्वेन यथायथं निवर्त्तकत्वात् । प्रकृतेऽप्यात्मज्ञानत्वेनैव निवर्त्तकत्वमिति चेन्न । अहमिति ज्ञानादपि बन्धनिवृत्त्या पत्तेः । अहं ब्रह्मास्मीति ज्ञानमेव विवर्त्तकमितिचेत्, तदेव हि तत्त्वज्ञानम्, 'आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः' इत्यादि श्रुतेः ।

तत्त्वज्ञानत्वेन निवर्त्तकत्वं च न निवर्त्यस्य मिथ्यात्वं विना निर्वहति । तथाहि-न तावद् बुद्ध्यादिप्रपञ्चोपहितब्रह्मज्ञानं तत्त्वज्ञानं भवति, ब्रह्मणो वस्तुतस्तथात्वाभावात्, किन्तु विशुद्धब्रह्मज्ञानम्, विशुद्धिश्च प्रपञ्चराहित्यम् । न च सत्यप्रपञ्चाश्रये तदानीमेव तद्राहित्यं वर्त्तते । न चावर्त्तमानस्य साक्षात्कारविषयत्वसम्भवः, येनासौ भाविनीं निष्प्रपञ्चतामवगाहेत ।

अस्तु प्रपञ्चोपादानत्वेन ज्ञानमेव तत्त्वज्ञानमिति चेन्न । मृदादेस्तथात्वेन ज्ञानेऽपि घटाद्य-

इच्छाका, शोकका, पापका, विषका, एवं प्रवृत्तिप्रागभावका निवर्त्तक है, तत्त्वज्ञानत्वरूपसे निवर्त्तक नहीं हैं।

शंका—प्रकृतमें भी आत्मज्ञानत्वसे ही आत्मज्ञान, बन्धका निवर्त्तक रहो ? तत्त्वज्ञानत्वरूपसे तत्त्वज्ञानको क्यों निवर्त्तक माना जाता है ?

समाधान—यदि आत्मज्ञानत्वसे आत्मज्ञान बन्धका निवर्त्तक मानाजाय तो 'अहं' ऐसा ज्ञान भी तो आत्मज्ञान है, उससे भी बन्धकी निवृत्ति हो जायगी, परन्तु होती नहीं है, अतः तत्त्वज्ञान ही बन्धका निवर्त्तक है।

शंका—'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा ज्ञान ही बन्धका निवर्त्तक रहो ?

समाधान—यही तो तत्त्वज्ञान है, श्रुति भी कहती है—'यह साक्षात् अपरोक्ष—ब्रह्म ही मैं हूँ, इसप्रकार जो पुरुष अपने आत्माको जानता है—इत्यादि ।

'तत्त्वज्ञानत्वरूपसे तत्त्वज्ञान बन्धका निवर्त्तक है' यह सिद्धान्त निवर्त्य बन्धके मिथ्यात्व विना सिद्ध नहीं हो सकता है। यही विषय स्पष्टरूपसे कहते हैं—बुद्ध्यादि प्रपञ्चसे उपहित ब्रह्मज्ञान तत्त्वज्ञान नहीं हो सकता है । क्योंकि—वस्तुतः ब्रह्म प्रपञ्चसे उपहित नहीं है। किन्तु विशुद्ध ब्रह्मज्ञान ही तत्त्वज्ञान है, ब्रह्ममें प्रपञ्चका अत्यन्ताभाव ही विशुद्धि है । सत्यप्रपञ्चवाले ब्रह्ममें उसीसमय प्रपञ्चका अभाव नहीं रह सकता है। और ब्रह्ममें नहीं रहे हुये प्रपञ्चाभावके साक्षात्कार का सम्भव नहीं होसकता, जिससे भावी में होने वाली निष्प्रपञ्चता का तत्त्वज्ञानी जीवन्मुक्त अनुभव करे ।

शङ्का—प्रपञ्च उपादान कारणत्वेन ब्रह्म ज्ञान ही तत्त्वज्ञान रहो ?

समाधान—घटादिकार्यकी उपादान कारणता के रूपसे मृदादिका ज्ञान हो जानेपर भी घटादि कार्य की निवृत्ति नहीं होती है। और लोकमें दृष्टसे

निवृत्तेः, दृष्टविपरीतस्य चाकल्पनात् । तस्मात्प्रपञ्चसत्त्वकालेऽपि ब्रह्मणि निष्प्रपञ्चत्वप्रमा वाच्या, सा च न प्रपञ्चमिथ्यात्वं विनेति । तथापि कथं सप्रपञ्चे प्रपञ्चराहित्यं तद्वति तदत्यन्ताभावासत्त्वादिति चेन्न । तत्समसत्ताकस्यैव तदत्यन्ताभावस्य तद्वत्यवृत्तेः । व्यावहारिकस्य च प्रपञ्चस्य स्वकालेऽपि ब्रह्मणि पारमार्थिकात्यन्ताभावाविरोधात् ।

अत एव त्रैकालिकनिषेधस्य परमार्थदृष्टरजताभावविषयत्वमुक्तं विवरणे । शुक्तौ परमार्थत्वेन दृष्टं यन्मिथ्यारजतं तत्प्रतियोगिकाभावात्मकाधिष्ठानविषयत्वं हि तदर्थो, न तु लौकिकापणस्थरजताभावविषयत्वम् । लौकिकस्यात्र निषेध्यत्वेऽमिथ्यात्वापत्तेः । नेह नानेति श्रुत्या दृश्यमानप्रपञ्चस्य ब्रह्मणीव, शुक्तौ प्रती-

विपरीत अदृष्टकी कल्पना नहीं की जाती है, किन्तु दृष्टके अनुसार ही अदृष्ट की कल्पना हो सकती है । इसलिये प्रपञ्चकी वर्तमानताके समयमें भी ब्रह्ममें प्रपञ्चाभाव की प्रमा (यथार्थ ज्ञान) कहनी चाहिए, सो प्रमा प्रपञ्च-मिथ्यात्वके विना नहीं हो सकती है ।

शंका—तथापि प्रपञ्चवाले ब्रह्ममें प्रपञ्चका अभाव कैसे हो सकता है ? क्योंकि—जो जहाँ रहता हैं, वहाँ उसका अत्यन्ताभाव नहीं रह सकता है ?

समाधान—प्रतियोगी-पदार्थकी समानसत्तावाला, प्रतियोगी—पदार्थ का अत्यन्ताभाव ही प्रतियोगीके आश्रयमें नहीं रह सकता है, किन्तु विषमसत्तावाला अभाव प्रतियोगीके आश्रयमें रह सकता है, व्यावहारिक प्रपञ्चवाले ब्रह्ममें प्रपञ्चकालमें भी पारमार्थिक प्रपञ्चात्यन्ताभावके रहने में कुछ भी विरोध नहीं है ।

इसलिये विवरणग्रन्थमें 'कल्पित रजत का त्रैकालिक निषेध, (न था, न है, और न होगा) परमार्थ (सत्य) रूपसे दृष्ट रजतके अभाव को विषय करता है' यह कहा है । "शुक्तिमें सत्यरूपसे दृष्ट जो मिथ्या रजत है, वह प्रतियोगी है जिस अभाव का, सो अभावरूप अधिष्ठान ही त्रैकालिक निषेध का विषय है, हट्टमें रहा हुआ जो लौकिक रजत है, उसका अभाव त्रैकालिक निषेधका विषय नहीं है" यह उक्त विवरण ग्रन्थका अर्थ है । यदि इस पुरोऽवस्थितशुक्तिमें लौकिक-हट्टस्थलीय-रजत, त्रैकालिक निषेध का विषय (निषेध्य) माना जाय तो रजत मिथ्या नहीं होगा । इसलिय जस 'नेह नानाऽस्ति किञ्चन' श्रुतिसे ब्रह्ममें दृश्यमान प्रपञ्चका ही त्रैकालिक-अभाव प्रतीत होता है, तैसे शुक्तिमें प्रतीयमान रजत का ही त्रैकालिक-अभाव

यमानरजतस्यैव तत्र त्रैकालिकाभावप्रतीतेश्च । घटस्य तदभावाभावत्ववच्चाधिष्ठानस्य भावस्याध्यस्तनिरूपिताभावत्वं न विरुध्यते ।

प्रतीत होता है, जैसे घट, घटाभाव का अभाव रूप है, तैसे भावरूप अधिष्ठानको अध्यस्तका अभाव रूप माननेमें कुछ भी विरोध नहीं है ।

केचित्तु—रजतस्य परमार्थत्वाकारेण प्रतियोगिमति यत्त्रैकालिकाभावस्तत्परोऽयंग्रन्थः । परमार्थत्वस्य व्यधिकरणत्वे च प्रतियोगिनो मिथ्यात्त्वमपि सिध्यतीति व्याचक्षते । सर्वथाऽप्युपपन्नः प्रपञ्चकालेऽपि ब्रह्मणि प्रपञ्चाभाव इति संक्षेपः ॥५६॥

कोई आचार्य, पूर्वोक्त विवरणग्रन्थका इसप्रकार व्याख्यान करते हैं–' यहां रजत नहीं है, इत्यादिनिषेध का, प्रतियोगी–रजतके आश्रयभूत शुक्तिमें, पारमार्थिकत्व रूपसे रजतका त्रैकालिक निषेध ही विषय है, रजतत्व रूपसे रजतका निषेध विषय नहीं है; अतः पारमार्थिक-रजत निषेधमें तात्पर्यवाला ही यह विवरणग्रन्थ है । परमार्थत्वको रजतसे भिन्न–अधिकरणमें माननेपर रजत रूप प्रतियोगिका मिथ्यात्व भी सिद्ध होजाता है" । इसमतमें भी-प्रपञ्चके समयमें भी ब्रह्ममें प्रपञ्चका अभाव, युक्तिसे सिद्ध होता है, यह संक्षेप है ॥ ५६ ॥

अध्यासवर्णकमुपसंहरन्सम्भावितविषयप्रयोजनत्वाच्छास्त्रारम्भं निगमयति—

अध्यास–भाष्यके व्याख्यान का उपसंहार करते हुए, शास्त्रके विषय और प्रयोजन को सम्भावित होनेसे शास्त्रके आरम्भकी प्रतिज्ञा करते हैं—

तस्मादध्यस्तमेतत्सकलमपि दृशौ भूमरूपातिरिक्तं,
रूपं स्वाज्ञानमात्रादिति भवति परब्रह्मधीबाध्यमेतत् ।
ईशित्रादिप्रभेदप्रतिहतिफलकज्ञानदौस्थ्यापनुत्यै,
श्रीमच्छारीरकार्थप्रकटनपटुताशालि शास्त्रं विदध्मः ॥५७॥

इसलिये ब्रह्मसे भिन्न, कर्तृत्वादि समस्त दृश्य प्रपञ्च, आत्माके अज्ञानसे चिदात्मामें अध्यस्त है, अतः यह प्रपञ्च परब्रह्मके ज्ञानसे बाध्य होता है। ईश्वर जीव आदि भेदाध्यासकी निवृत्तिरूपी-फलवाले ज्ञानके असम्भावनादि प्रतिबन्धकके विध्वंसके लिये श्रीमच्छारीरक भाष्यके ब्रह्मात्मैक्य-रूप अर्थके प्रकट करनेमें अतीव कुशल शास्त्रकी हम रचना करते हैं ॥५७॥

तस्मादिति । एतत्प्रत्यक्षं सकलमपि कर्तृत्वभोक्तृत्वादि स्वाज्ञानमात्रादेव दोषाद् दृशौ चिदात्मन्यध्यस्तम् । कुत इत्याह–भूमेति। भूमरूपे हि ब्रह्मणि अल्परूपं परत्र परावभासत्वादध्यस्तमेव सम्भवतीत्यर्थः । ततः किमित्यत आह–

यह कर्तृत्व भोक्तृत्वादि समस्त प्रत्यक्ष संसार, केवल अपने आत्माके अज्ञानरूप दोषसे ही दृक्‌रूप-चिदात्मामें अध्यस्त है । क्यों अध्यस्त है ? यह कहते हैं–भूमेति व्यापकरूप ब्रह्ममें अल्परूप, अन्यमें अन्य का अवभास होनेसे अध्यस्त ही हो सकता है । इससे

इतीति। अध्यस्ततासिद्धौ च परब्रह्मधीबाध्यत्वं सूचितं सिद्धं भवतीत्यर्थः।

तेन विषयादिसम्भवात् श्रीमच्छारीरकार्थ-ब्रह्मात्मैक्यस्य यत्प्रकटनमपराधापनयनेन स्फुटी-करणं तत्र यत्पटुत्वमुपपत्तिबाहुल्यं तद्युक्तं शास्त्रं समासव्यासाभ्यां चतुर्लक्षणीनयसंग्रहाच्छास्त्र-कल्पं प्रकरणं कुर्म इत्यर्थः। तन्निर्माणफलमाह— ईशित्रादीति। जीवेशादिभेदाध्यासप्रतिहतिफलक-वाक्योत्थज्ञानस्य यद् दौस्थ्यं प्रतिबन्धात्फल पर्यन्तताराहित्यं तन्निराकर्तुमित्यर्थः ॥५७॥

क्या सिद्ध हुआ ? यह कहते हैं–इतीति। दृश्यसंसार को अध्यस्त सिद्ध होने पर 'यह अध्यस्त संसार, परब्रह्मके ज्ञानसे बाध्य है' यह सूत्रसे सिद्ध होता है।

पूर्वोक्त कथनसे विषय–प्रयोजनादिका सम्भव होने पर श्रीमच्छारीरक भाष्यके ब्रह्मात्मैक्य-अर्थका प्रगट करनेमें (असम्भावनादि–पुरुषापराधकी निवृत्ति द्वारा स्पष्ट करनेमें) पटु (युक्तिप्रधान) शास्त्रका हम निर्माण करते हैं। यानी संक्षेप एवं विस्तारसे चार अध्यायवाले ब्रह्मसूत्रके न्यायोंका संग्रह करनेसे शास्त्रके सदृश इसप्रकरण–ग्रन्थको भी शास्त्र कह सकते हैं। इस ग्रन्थके निर्माणका फल कहते हैं—ईशित्रादीति। जीव–ईश्वर आदि भेदाध्यास की निवृत्तिरूपी फलवाला, जो महावाक्यजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान है, उसके दौस्थ्य (असम्भावनादिरूप प्रतिबन्धसे अविद्यानर्थ निवृत्तिपर्यन्तता का अभाव) का निराकरण करना, इस ग्रन्थका फल है, यह अर्थ है ॥ ५७ ॥

अगतार्थवर्णक्रमवतारयिष्यन्—ननु यदि ब्रह्मान्यतः सिद्धं किं तद्विचारेण, अथासिद्धं न शक्यं विचारयितुम्, वेदान्तादापातप्रतिपन्नं विचार्यमिति चेत् केयमापातप्रतिपत्तिः, न पद-जन्या, ब्रह्मपदे व्युत्पत्त्यभावात्। अत एव न तत्समभिव्याहृतवाक्यजन्या। 'किञ्चिद्ब्रह्मास्ति' इति प्रतिपत्तिः सेति चेन्न, तस्या बुभुत्सामात्रहेतु-

कर्मकाण्डके व्याख्यानसे वेदान्त–शास्त्रका व्याख्यान अगतार्थ (अचरितार्थ) है, अतः वेदान्तशास्त्र (ब्रह्मसूत्र) के व्याख्यान का अवतरण (प्रस्ताव) करनेके लिए प्रथम शंका करते हैं—

शंका—यदि ब्रह्म प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे सिद्ध है, तो उसके विचारसे क्या प्रयोजन ? यदि सिद्ध नहीं है तो भी उसका विचार शक्य नहीं होसकता ?

सिद्धान्ती—वेदान्त (उपनिषद्) से आपत–ज्ञात ब्रह्म विचार करने योग्य है।

पूर्ववादी–ब्रह्मका आपात–ज्ञान कैसा है ? वह पदसे जन्य नहीं है, क्योंकि प्रमाणान्तरसे ब्रह्मका बोध न होनेके कारण ब्रह्म पदमें शक्तिज्ञान नहीं है। अत एव पदोंका समूहरूप वाक्यसे भी ब्रह्मका आपात–ज्ञान नहीं होसकता।

त्वेन विचाराहेतुत्वात्, अतो न ब्रह्म विचार्यम्।

न वा बन्धनिवृत्तिस्तत्फलमित्यादावाक्षिप्य समाधत्ते—

सिद्धान्ती—'ब्रह्म कुछ वस्तु है' यह आपात ज्ञान है।

पूर्ववादी—ऐसा ज्ञान, केवल बुभुत्सा (जानने की इच्छा) का कारण होनेसे विचार का कारण नहीं हो सकता, इसलिये ब्रह्म विचार करने योग्य नहीं है। और ब्रह्म विचारका फल बन्धकी निवृत्ति भी नहीं है, इत्यादि प्रकारसे आक्षेप करके सिद्धान्ती समाधान करते हैं—

मीमांसितव्यमनयैव सदद्वितीयं, मीमांस्यमेव च सदात्मतयाऽनयैतत्।
ज्ञातं प्रयोजनमनेन पथेदमस्यास्तन्नान्तरीयकतया च तमोनिवृत्तिः ॥५८॥

सत् अद्वितीय ब्रह्म, इस शारीरक-मीमांसासे ही विचार करने योग्य है, और इस मीमांसा से ही वह सद्ब्रह्मआत्माके साथ अभेदरूपसे विचार करने योग्य है। इस मीमांसाका पूर्वोक्त पद्धतिसे ज्ञात प्रत्यगभिन्न ब्रह्म, प्रयोजन (फल) है, और तादृश ब्रह्मज्ञानके सहभावी अज्ञान की निवृत्ति भी प्रयोजन है ॥ ५८ ॥

मीमांसितव्यमिति। न तावदन्यतः सिद्धमेव ब्रह्मेह विचार्यम्, तस्योपनिषदन्यमानागोचरत्वात्, अतोऽद्वितीयं सदविचारितान्महावाक्यात्सम्मुग्धोपस्थितमनयैव मीमांसया मीमांसितव्यम्, अखण्डानन्दात्मना ज्ञातव्यम्, ब्रह्मण औपनिषदत्वेन तद्विचारस्यैव तन्निश्चायकत्वौचित्यात्। ब्रह्मपदस्य बृहत्पदार्थानुगमेन सर्वानुवृत्तसत्तास्फुरणात्मनि व्युत्पन्नत्वादात्मशब्दस्य च 'यच्चाप्नोति यदादत्ते, इति प्रत्यगर्थ एव प्रसिद्धेस्तयोरैक्यस्य विचार्यत्वसम्भवात्तद्दर्शयति–मीमांस्यमेवेति। सत आत्मत्वेनाज्ञानादनया मीमां-

प्रत्यक्षादिप्रमाणोंसे सिद्ध ब्रह्म, इस मीमांसामें विचार करने योग्य नहीं है, क्योंकि–उपनिषत्-प्रमाणसे अतिरिक्त प्रत्यक्षादि प्रमाणों का ब्रह्म विषय नहीं है। इसलिये अविचारित-महावाक्यके श्रवणसे ज्ञात एवं संशयादिसे ग्रस्त ब्रह्म ही इस शारीरक मीमांसा से विचार करने योग्य है, अखण्डानन्द–रूपसे वह जानने योग्य है। ब्रह्म, एकमात्र उपनिषद् से ही समधिगम्य है, अतः उपनिषद् वाक्यों का विचार ही ब्रह्मके निश्चयमें योग्य कारण है। बृहत (व्यापक सबसे बड़ा) पदके अर्थके अनुसार, सबमें रहने वाली सत्ता, एवं स्फुरणरूप वस्तुमें ही ब्रह्मपद व्युत्पन्न (शक्त) है। और 'यच्चाप्नोति यदादत्ते' 'जो सबको व्याप्त करता है, प्रलयमें जो सबको अपने में लीन करता है, वह आत्मा है' इस वचनसे आत्म शब्द भी प्रत्यक् (साक्षी) आत्मामें ही प्रसिद्ध है, अतः ब्रह्म और प्रत्यगात्माका ऐक्य ही यहाँ विचार करने योग्य है, यही दिखाते हैं-मीमांस्यमेवेति। सद्ब्रह्मका आत्मरूपसे ज्ञान नहीं है, अतः इस शारीरक मीमाँसासे

सया तदेवात्माभेदेन मीमांस्यं नान्यन्नियोगादीत्यर्थः ।

नन्वस्तु ब्रह्मात्मैक्यं विचार्यत्वाद्विषयः फलासिद्धिस्तु तदवस्थैवेत्याशङ्क्याह-ज्ञातमिति। अनेन=प्रागुक्तेन पथाऽस्या मीमांसाया इदमेव प्रत्यगभिन्नमद्वयानन्दं ब्रह्म ज्ञातं सत्प्रयोजनं भवतीत्यर्थः। नन्वेवं बन्धनिवृत्तिर्न फलं स्यात्ततः प्रागुक्तविरोध इत्यत आह-तन्नान्तरीयेति। ब्रह्मात्मबोधे सति तमोनिवृत्तेरर्थसिद्धत्वेन पृथग्व्यापारानपेक्षत्वात्तुलोन्नमनवन्न सापि पृथगुद्देश्यतया फलमित्यर्थः।

ननु-तमोनिवृत्तेरधिष्ठानमात्रत्वेन आत्माभिन्नायाः प्रागपि सत्त्वात्कथं ज्ञानसाध्यत्वमिति चेन्न। यस्मिन्सत्यग्रिमक्षणे यत्सत्त्वं यदभावे चाभावस्तस्यैव तत्साध्यत्वात्। अस्ति च ज्ञाने सत्यग्रिमक्षणेऽज्ञाननिवृत्तिरूपात्मसत्त्वं तदभावे चाज्ञाननिवृत्त्यभावोऽज्ञानम्। आत्मनोऽज्ञानाभावत्वेऽज्ञानस्यापि तदभावरूपत्वादिति। अस्तु

सद् ब्रह्म ही आत्मासे अभिन्नरूप करके विचारने योग्य है अन्य विधिकाण्डादि इस ग्रन्थसे विचारने योग्य नहीं है।

शंका—ब्रह्म-आत्माका ऐक्य विचार्य होनेसे इस मीमांसाका विषय रहो, प्रयोजनरूप फलकी असिद्धि तो जैसीकी तैसी रही है?

समाधान—ज्ञातमिति। पूर्वोक्तमार्गसे इस मीमांसाका प्रत्यगात्मासे अभिन्न,अद्वयानन्द ज्ञात हुआ ब्रह्म ही प्रयोजन (फल) है।

शंका–इसप्रकार ज्ञात ब्रह्मको प्रयोजन मानने पर बन्ध-निवृत्ति प्रयोजन न होगी, इससे प्रथम कथनके साथ विरोध होगा।

समाधान–तन्नान्तरीयेति। ब्रह्मात्माका साक्षात्कार होने पर अविद्यानिवृत्ति को अर्थात् सिद्ध होनेसे अविद्यानिवृत्तिके लिये पृथक् प्रयत्न की अपेक्षा नहीं है, अतः तुलाके उन्नमन की तरह* अविद्यानिवृत्ति पृथक् उद्देश्यरूपसे फल नहीं है।

शंका–अविद्यानिवृत्ति को एकमात्र अधिष्ठान स्वरूप होनेसे आत्मासे अभिन्न जो अविद्या की निवृत्ति है, वह प्रथम भी विद्यमान थी, अतः वह ज्ञान-साध्य कैसे हो सकती है?

समाधान–जिसके होनेपर अग्रिम-क्षणमें जो विद्यमान रहता है, एवं जिसके न होने पर जो नहीं रहता है, वह उससे साध्य होता है। ज्ञानके रहने पर अग्रिमक्षणमें अज्ञानकी निवृत्तिरूप आत्माका साक्षात्कार होता है, और ज्ञानके न रहनेपर अज्ञान निवृत्तिका अभावरूप अज्ञान रहता है, क्योंकि-जब आत्मा अज्ञानाभावरूप है तो अज्ञान भी अज्ञानाभावाभावरूप है।

शंका-ठीक है, यदि अज्ञान की निवृत्ति, अज्ञान

* जैसे तुला (तराजू) से अन्नादिका तोलनारूप व्यवहार सिद्धहोनेपर तराजूका उठना अवश्यंभावी है, तद्वत् ब्रह्मात्मबोध होनेपर अविद्यानिवृत्ति अर्थात् सिद्ध होजाती है।

तमोऽत्यन्ताभावस्तमोनिवृत्तिः तस्यानादित्वेन ब्रह्माभेदयोग्यत्वात् न तमोध्वंसः तस्य प्रतियोग्यसमानकालत्वादिति चेन्न, प्रतियोगिसमसत्ताकस्यैव तस्य तदसमानकालत्वमित्युक्तत्वादिति दिक् ।

अथवा-ननु-कथं निरतिशयं सुखमेव पुरुषार्थः, अविद्यानिवृत्तेरपि तथात्वादित्याशङ्क्याद्वैतानन्दब्रह्मावाप्त्यर्थं ब्रह्मणि प्रतिपाद्यमाने तदविद्यानिवृत्तिस्ततोऽनुद्देश्यापि ज्ञानसामर्थ्याद्भवतीति न तत्परमप्रयोजनमिति भावेनाह— तन्नान्तरीयकतयेति ।

नन्वद्वितीयं सद्ब्रह्माविचारितान्महावाक्यादापातप्रतिपन्नमनयैव मीमांसितव्यमखण्डानन्दात्मना ज्ञातव्यमित्ययुक्तम्, जैमिन्यादीनां कृत्स्न-

का अत्यन्ताभावरूप हो, तो अत्यन्ताभाव को अनादि होनेसे निवृत्ति ब्रह्मसे अभेदके योग्य हो सकती है । परन्तु जब अज्ञानकी निवृत्ति, अज्ञानध्वंसरूप है, तब तो अज्ञानका ध्वंस, प्रतियोगी—अज्ञानके समान कालमें नहीं रह सकता है । अर्थात् ध्वंस सादि है, सादि ध्वंस, अनादि ब्रह्मसे अभिन्न कैसे हो सकता है ?

समाधान—प्रतियोगि की समान सत्तावाला ध्वंस प्रतियोगीके समानकालमें नहीं रह सकता है, परन्तु प्रतियोगीसे विषमसत्तावाला ध्वंस, प्रतियोगीके समानकाल में भी रह सकता है, यहाँ अज्ञान का ध्वंस अधिष्ठान-ब्रह्मरूप होनेसे पारमार्थिक सत्तावाला है, और प्रतियोगी-अज्ञान, व्यावहारिक-सत्ता वाला है, इसलिये कोई भी विरोध नहीं है, यह प्रथम भी कहा था ।

अथवा—प्रकारान्तरसे शंका करते हैं—

शंका—निरतिशय (न्यूनाधिकभावरहित) सुख ही पुरुषार्थ क्यों है ? अविद्या की निवृत्ति भी तो पुरुषार्थ हो सकता है ?

समाधान—अद्वैतानन्द ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये ब्रह्म का प्रतिपादन करने पर ज्ञानके सामर्थ्यसे उद्देश्य रहित भी अविद्याकी निवृत्ति, हो जाती है, अतः अविद्या-निवृत्ति परम प्रयोजन नहीं है, किन्तु अद्वैतानन्द ब्रह्म प्राप्ति ही परम प्रयोजन है, और अविद्यानिवृत्ति गौण प्रयोजन है, इसी आशयसे कहते हैं—तन्नान्तरीयकतयेति ।

शंका—अविचारित-महावाक्यसे आपाततः ज्ञात अद्वितीय सद्ब्रह्म ही इस मीमाँसासे विचार करने योग्य है, और अखण्डानन्द आत्मरूपसे जानने योग्य है, यह जो प्रथम कहा था, वह अयुक्त है, क्योंकि—जैमिनि आदि कर्म-काण्डियोंने समग्र वेदको 'किं केन कथम्'* इन तीन

* 'किं' यह फलाकांक्षा है 'केन' यह करणाकांक्षा, एवं 'कथं' यह इतिकर्तव्याकांक्षा है । यागसे 'किं' क्या साध्य है ? स्वर्ग, 'केन' किससे साध्य है ? यागसे, 'कथं' कैसे साध्य है ? अनुयाजादि द्वारा ।

स्य वेदस्य किं केन कथमित्यंशत्रयविशिष्टार्थभावनाख्यपुम्प्रवृत्तिरूपक्रियापरत्वावगमेनाक्रियार्थानां धर्मप्रमितिजननरूपप्रयोजनशून्यत्वेन लौकिकवाक्यत्वमाशङ्क्य शिष्टैरध्ययनविधिपरिगृहीतत्वेन विधिनैकवाक्यत्वेन सिद्धार्थानामपि प्रयोजनवत्त्वेन लक्षणयापि क्रियाऽपेक्षितस्तुत्यादिबोधित्वेन प्रामाण्यवद्वेदान्तानामपि विध्यपेक्षितकर्तृस्तावकत्वेन ज्ञानविधिशेषत्वेन वा आत्मब्रह्मप्रतिपादकत्वेन विचार्य्यत्वस्याभिप्रेतत्वादिति चेन्न।

जैमिन्यादेरक्रियार्थानां क्रियाप्रतिपादकत्वेन प्रामाण्यवर्णनं कर्मकाण्डप्रकरणस्थसिद्धबोधिवाक्याभिप्रायेण, न भिन्नप्रकरणस्थवेदान्ताभिप्रायेण, तेषामकर्त्रात्मबोधकत्वेन कर्मापेक्षितकर्तृस्तावकत्वासम्भवात् कर्त्रनन्त्रे ज्ञाने विध्यसम्भवेन तच्छेषतया ब्रह्मप्रतिपादकत्वासम्भवाच्च ॥५८॥

ननु-जैमिन्यादेरित्थमाशयवर्णनमयुक्तम्, तेन सर्ववेदार्थविचारस्य कृतत्वात्। अन्यथा

अंशोंसे युक्त अर्थभावना नामक पुरुष-प्रवृत्तिरूप क्रियाका बोधक माना है। अतएव पूर्वमीमाँसामें धर्मके यथार्थ ज्ञानकी उत्पत्तिरूप प्रयोजनसे रहित होनेके कारण यागादि क्रियाके अबोधक अर्थवादवाक्योंमें लौकिक वाक्योंकी तरह अप्रामाण्य की शङ्का करके समाधान किया है कि—शिष्ट-पुरुषों करके अध्ययनविधि (स्वाध्यायोऽध्येतव्यः) द्वारा परिगृहीत होनेसे एवं विधि (यजेत् आदि) वाक्यके साथ एकवाक्यता होनेसे क्रियाके अबोधक, सिद्ध-अर्थके बोधक अर्थवादवाक्य भी प्रयोजनवाले हैं। तथाच लक्षणादिसे यागादि क्रियामें अपेक्षित स्तुति आदिके बोधक होनेसे अर्थवाद वाक्य जैसे प्रमाण हैं। तैसे विधिमें अपेक्षित कर्ता-यजमान की स्तुति करनेसे, अथवा आत्मा व ब्रह्मके प्रतिपादन द्वारा ज्ञान (उपासना) विधिके सहायक होनेसे सिद्धार्थ बोधक वेदान्त-वाक्य विचार्य हैं, यह अभिप्राय है ?

यह शंका ठीक नहीं है—इसका समाधान कहते हैं—

समाधान—जैमिनि आदिने जो क्रियासे भिन्न बोधक वाक्योंका क्रिया प्रतिपादकत्वेन प्रामाण्य वर्णन किया है वह कर्मकाण्ड प्रकरणमें वर्तमान सिद्धार्थ-बोधक अर्थवाद वाक्यके अभिप्रायसे किया है। कर्म प्रकरणसे भिन्न प्रकरणमें वर्तमान वेदान्तवाक्योंके अभिप्रायसे प्रामाण्य वर्णन नहीं किया है। क्योंकि—वेदान्त वाक्योंको अकर्ता आत्माके बोधक होनेसे कर्ममें अपेक्षित कर्ताकी स्तुति करना असम्भव है। और कर्ताकी आधीनतासे रहित ज्ञानमें विधिका असम्भव होनेसे, विधि शेषत्वेन वेदान्तवाक्योंको ब्रह्मका प्रतिपादन करना भी सर्वथा असम्भव है ॥ ५८ ॥

शंका—जैमिनि आदिका इसप्रकारका आशय वर्णन करना ठीक नहीं है, क्योंकि—जैमिनि आदिने समग्र वेदके अर्थका विचार किया है। अन्यथा (जैमिनि आदि

धर्मजिज्ञासासूत्रस्थाथातःशब्दविरोधात् । अथ शब्देन हि कृत्स्नशाखाध्ययनानन्तर्यं स्वविचारस्य दर्शयति । वेदान्तानामविचार्यत्वे च तदध्ययनानन्तर्यस्य स्वविचारे किं प्रयोजनम् । एवमतःशब्देन कृत्स्नवेदस्य स्वार्थे प्रामाण्यं दर्शयति । तदप्येवं सत्यनुपपन्नंस्यात्ततो वेदान्तानां जैमिन्यादिभिरेव विचारितत्वाद्बादरायणादिभिस्तन्नविचारणीयमिति तत्राह—

केवल कर्मकाण्डका विचार किया है, उपनिषद्वाक्योंका विचार नहीं किया है, ऐसा मानने पर) धर्मजिज्ञासा सूत्रमें वर्तमान 'अथ व अतः' शब्दसे विरोध होगा । क्योंकि जैमिनिमुनि 'अथ' शब्दसे 'वेदकी समग्र शाखाओंके अध्ययनके अनन्तर स्वकृत वेदार्थका विचार है" इस अर्थको दिखाते हैं । वेदान्तका विचार यदि जैमिनिको कर्तव्य नही है तो वेदान्तके अध्ययनके आनन्तर्यका स्वविचार (पूर्वमीमाँसा) में क्या प्रयोजन है ? इसीप्रकार 'अतः' शब्दसे समस्त वेदका स्वार्थमें प्रमाण्य दिखाते हैं । वेदान्त को अविचार्य माननेपर समस्त वेदका स्वार्थमें प्रामाण्य असिद्ध हो जायगा । इसलिये जैमिनि आदि कर्मकाण्डियोंने ही वेदान्त वाक्यों का विचार कर लिया है, अतः बादरायण (वेदव्यास) आदि महानुभावोंको वेदान्त-वाक्योंका विचार नहीं करना चाहिए । ऐसी शंका होनेपर श्लोकसे समाधान कहते हैं—

न च गतार्थमिदं प्रतिभाति नो, न हि विधेः पदमात्मसमीक्षणम् ।
न खलु यागददातिजुहोतिवत्, पुरुषतन्त्रमिहात्मनिदर्शनम् ॥ ५९ ॥

यह वेदान्त-विचार-शास्त्र, अन्य शास्त्रसे चरितार्थ नहीं है, ऐसा हमारा निश्चय है, और आत्मज्ञान, विधिका विषय नहीं है । एवं याग, दान, होमकी तरह आत्मज्ञान, कर्ताके आधीन नहीं है ॥५९॥

न च गतार्थमिति । गतो विचारपूर्वकं ज्ञातोऽर्थो यस्य वेदान्तविचारशास्त्रस्य तत् । किं वेदान्तगम्यमद्वयं ब्रह्म, तच्च जैमिन्यादिभिर्निरूपितमित्युच्यते । किं वा कार्यमेव वेदान्तानामर्थः, तच्च जैमिनिना निरवशेषं निरूपितमि-

गत यानी विचारपूर्वक ज्ञात अर्थ है जिस वेदान्त विचार शास्त्रका, वह गतार्थ है ।

प्रश्न—जैमिनि आदिने वेदान्त-प्रतिपाद्य अद्वय ब्रह्मका निरूपण किया है क्या यह कहते हो ? अथवा वेदान्तोंका भी कार्य (कर्तव्य) ही अर्थ है, उस कार्य अर्थका जैमिनिने समग्र निरूपण कर दिया है, इसलिये यह उत्तरमीमाँसाशास्त्र पूर्वमीमांसासे चरितार्थ है यह कहते हो ।

इन दो पक्षोंमेंसे आद्य पक्ष ठीक नहीं है, क्यों-

तीदं शास्त्रं गतार्थमिति । न तावदाद्यः । तत्र तदप्रतीतेः । साध्यरूपधर्मन्यायेन सिद्धब्रह्मणो निर्णयासम्भवात् । धर्मजिज्ञासासूत्रे धर्मस्यैव विचार्यत्वेन प्रतिज्ञातत्वाच्च । न चाथातः शब्दानुरोधेन धर्मशब्देन वेदार्थमात्रं लक्ष्यतामिति वाच्यम् । अन्यथासिद्धाथातःशब्दानुरोधेन विचार्यमाणतया अनन्यथासिद्धप्रधानाभिधायिधर्मशब्दस्य लक्षणायोगात् । अध्ययनविधिर्हि कृत्स्नशाखाध्ययनं विधत्ते, न त्वेकदेशाध्ययनमात्रमतोऽध्ययनविधिप्रयुक्त्या न कर्मकाण्डमात्राध्ययनं सम्भवति ।

एवं च वेदान्ताध्ययनं यद्यपि न कर्मविचारोपयोगि, तथाप्येकविधिप्रयुक्ततया तस्यावश्यकत्वेन तदध्ययनवत एव कर्मविचार इति तदन्यथासिद्धम् । एवमतःशब्दसूचिताध्ययनदृष्टार्थत्वस्यापि वेदान्ताध्ययने समत्वादेव तदर्थवत्त्वसिद्धेर्न तद्बलादपि धर्मशब्दे लक्षणेति

कि–जैमिनिके पूर्वमीमांसा–शास्त्रमें अद्वैत-ब्रह्मके निरूपणकी प्रतीति नहीं है। साध्यधर्म की निर्णायक युक्तियो से सिद्ध-ब्रह्मका निर्णय–असम्भव है । और धर्मजिज्ञासा सूत्रमें धर्म ही विचार्यत्वेन प्रतिज्ञात है।

शंका–'अथ और अतः' शब्दके अनुरोधसे 'अथातो धर्मजिज्ञासा' इस सूत्रमें स्थित धर्म शब्दसे सम्पूर्ण वेदार्थका लक्षणा द्वारा ग्रहण रहो, अर्थात् धर्मपद ब्रह्मका उपलक्षण है, अतः पूर्व मीमांसा शास्त्रसे ब्रह्मका भी निरूपण हो जायगा ।

समाधान–ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि 'अथ व अतः' शब्द अन्यथा सिद्ध है, इसलिये 'अथ अतः' शब्दके अनुरोधसे विचार्यत्वेन, अनन्यथासि प्रधान वाचक धर्म शब्दकी वेदार्थमें लक्षणा नहीं क सकते हैं । 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' यह अध्ययनवि वेदकी समग्र शाखाओंके अध्ययनका विधान करती है वेदका एकदेश केवल कर्मकाण्डके अध्ययनका विधा नहीं करती है, इसलिये अध्ययनविधिके बलसे केवल कर्मकाण्डके अध्ययनकी विधिका सम्भव नहीं है सकता है ?

इसप्रकार यद्यपि वेदान्तका अध्ययन, कर्म-विचा में उपयोगी नहीं है, तथापि 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इ एकविधिसे प्रयुक्त होनेके कारण वेदान्तका अध्ययन आवश्यक है, अतः वेदान्तके अध्ययनवालेको ही क का विचार करना चाहिये, इसप्रकार धर्मजिज्ञासासूत्रक 'अथ' पद अन्यथासिद्ध है । अर्थात् धर्मपदकी लक्षणा के विना भी अथ पद कर्म विचारमें समग्र वेदाध्ययनानन्तर्य रूप स्वार्थको बतलाकर चरितार्थ हो गया है इसीप्रकार जिज्ञासासूत्रके 'अतः' शब्दसे सूचित वेदके अध्ययनकी अर्थज्ञानरूपदृष्टार्थता भी वेदान्तके अध्ययनमें तुल्य है, इस हेतुसे अतः शब्द भी समग्र वेदाध्ययनमें दृष्टार्थत्वरूप स्वार्थको बतलाकर चरितार्थ है

नाद्वयब्रह्मविचारो गतार्थ इति भावः । नापि द्वितीयः । अग्निहोत्रादिकार्यस्य उपासनाकार्यस्य वा भिन्नप्रकरणस्थत्वाद् ब्रह्मनिष्ठवेदान्तेभ्यस्तद्प्रतीतेश्च ।

नन्वात्मा वा अरे द्रष्टव्य इत्यादिना ज्ञानं विधीयत इति कार्यमेव वेदान्तार्थ इति चेत्तत्राह—

न हीति । विधेः पदं विषयः विधेयमिति यावत् । यद्धि वाक्यार्थप्रमितिजन्यचिकीर्षाप्रयत्नाभ्यां निष्पाद्यं तद्विधेयं यथाऽग्निहोत्रादि, उपासना वा । न चात्मज्ञानं लौकिकं वा तत्तथाऽनिच्छतोऽप्रयतमानस्यापि शब्देन प्रत्यक्षादिना वा तद्दर्शनात् । एतदेव कर्तृतन्त्रं विधेयं, ज्ञानं च न तथेत्युच्यत इति ज्ञानं न विधेयमित्याशयेनाह—

न खल्विति । देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागो यागः, तस्य परस्वत्वापादनव्यापारो दानम्, याग एवासेचनाधिको होम इति विभागः ॥ ५९ ॥

किंच विधेयपदार्थज्ञानं विधिवाक्यार्थप्रतीतेः प्राग् वक्तव्यं, न च परमात्मज्ञाने तत्संभवतीत्याह—

गया है इस कारण 'अतः' शब्दके बलसे भी धर्म शब्दकी वेदार्थमें लक्षणा नहीं मान सकते, इसप्रकार अद्वैत ब्रह्म का विचार पूर्वमीमांसा-शास्त्रसे चरितार्थ नहीं है, यह भाव है ।

द्वितीयपक्ष (वेदान्तोंका कार्य अर्थ) भी ठीक नहीं है, क्योंकि—अग्निहोत्रादिरूपकार्य तथा उपासनारूपकार्य, ज्ञानके प्रकरणसे भिन्न प्रकरणमें प्रतिपादित है, और ब्रह्म प्रतिपादक वेदान्त-वाक्योंसे कार्यकी प्रतीति भी नहीं हो सकती है ।

शंका—'अरे ! मैत्रेयी आत्माका साक्षात्कार करना चाहिये' इत्यादि श्रुतिसे ज्ञानका विधान किया है, इस लिये वेदान्तका अर्थ कार्य ही है ?

समाधान—न हीति । विधिका पद यानी विषय (विधेय) ज्ञान नहीं हो सकता है, क्योंकि जो वाक्यार्थ के यथार्थज्ञानसे जन्य चिकीर्षा (करनेकी इच्छा) एवं प्रयत्नसे निष्पाद्य होता है, वही विधेय होता है । जैसे अग्निहोत्रादि तथा उपासना । आत्मज्ञान अथवा लौकिक विषयकज्ञान निष्पाद्य नहीं है, क्योंकि—इच्छा एवं प्रयत्नसे रहित पुरुषको भी शब्दसे तथा प्रत्यक्षादिसे ज्ञानकी उत्पत्ति देखी गई है । 'विधेय कार्य ही कर्ताके आधीन होता है, और ज्ञान कर्ताके आधीन नहीं है' यही पूर्वाचार्योंने कहा है । अतः ज्ञान विधेय नहीं है । इसी आशयसे कहते हैं—न खल्विति । देवताके उद्देशसे द्रव्य (पुरोडाशादि) का त्याग करना याग है । द्रव्यमें अन्य (ग्रहण करनेवाले) का स्वत्व (स्वामिपना) प्राप्त करानारूप व्यापारका नाम दान है । याग ही आसेचन अधिक हो जानेसे होम हो जाता है, यह विभाग है ॥ ५९ ॥

और विधिवाक्यार्थकी प्रतीतिसे प्रथम, विधेय पदार्थका ज्ञान कहना चाहिये, परन्तु परमात्माके ज्ञान की प्रथम प्रतीतिका सम्भव नहीं है, इसलिये भी परमात्माका ज्ञान विधेय नहीं है यही कहते हैं—

अपि च रूपितगोचरता विधे, र्न परमात्मधियोऽस्ति च रूपणम् ।
अविदिते परमात्मनि तद्धियो न खलु रूपितता घटनान्विता ॥६०॥

और विधिकी विषयता ज्ञात-अर्थमें ही होती है, परमात्माका ज्ञान विधिवाक्य श्रवणसे प्रथ ज्ञात नहीं है, क्योंकि वेदान्तश्रवणके प्रथम परमात्माका ज्ञान नहीं है, परमात्माको ज्ञात न होने परमात्माका ज्ञान ज्ञात नहीं हो सकता है, अतः विधिके विषयको ज्ञात न होनेसे विधिका असम्भ है ॥ ६० ॥

अपि चेति । रूपितो ज्ञातो विषयो यस्य तस्य भावस्तत्ता, ज्ञातधात्वर्थंगोचरता वक्तव्येति शेषः । ततः किं तत्राह—न परमात्मेति । रूपणं ज्ञानं प्रागिति शेषः । तथा च परमात्मज्ञानं कर्तव्यमिति वाक्यार्थधीर्न संभवतीति भावः । कुतस्तदनिरूपणमिति चेत् किमज्ञाते परमात्मनि तज्ज्ञानं ज्ञायते, विदिते वा । नाद्यः इत्याह—अविदित इति । घटनान्विता=युक्ता । न हि विशेषणीभूतं परमात्मानमज्ञात्वा परमात्मज्ञानमिति ज्ञातुं शक्यमित्यर्थः ॥६०॥

द्वितीयमाह—

रूपित यानी ज्ञात, गोचर यानी विषय है जि (विधि) का, उसको रूपितगोचर कहते हैं, रूपितगोचरपनेको रूपित गोचरता कहते हैं । अर्थात् ज्ञा धात्वर्थमें विधिकी विषयता कहनी चाहिये ।

प्रश्न—इससे क्या होगा ?

उत्तर—'न परमात्मेति । रूपण यानी ज्ञान 'प्राग्' ऐसा पद रूपणके साथ प्रथम जोड़ना चाहिये तथाच 'वेदान्तश्रवणके प्रथम परमात्माके ज्ञानका ज्ञा नहीं है' यह अर्थ द्वितीयपादका फलित हुआ एवंच 'परमात्मज्ञान करना चाहिये' ऐसा वाक्यार्थज्ञान नह हो सकता है, यह भाव है ।

शंका—परमात्मज्ञानका निरूपण क्यों नहीं है

समाधान—क्या परमात्माके अज्ञात होने पर परमात्माकाज्ञान जाना जाता है ? या ज्ञात होने पर ? प्रथम पक्ष ठीक नहीं है, यह कहते हैं—अविदित इति घटनान्विता यानी युक्ता, प्रमाणिकी । विशेषणीभूत परमात्माको न जान करके परमात्मज्ञानरूपविशिष्टज्ञान जाननेके लिये शक्य नहीं है, यह अर्थ है ॥६०॥

द्वितीयपक्ष (ज्ञात होने पर) का समाधान करते हैं—

विदितता परमात्मन इष्यते, यदि वृथा विधिरस्य धियो भवेत् ।
निखिलभेदनिदाननिवृत्तितो, भवति तद्विषयादि च दुर्लभम् ॥ ६१ ॥

यदि ज्ञानविधिवाक्यार्थज्ञानसे प्रथम परमात्माको ज्ञात मानते हो तो परमात्माके ज्ञानकी विधि

व्यर्थ हो जाती है। क्योंकि परमात्माको ज्ञात होनेपर समस्तभेदका कारण अज्ञानकी निवृत्ति होनेसे विधिके विषय आदि, दुर्लभ हो जाते हैं ॥ ६१ ॥

विदितेति । ज्ञानविधिवाक्यार्थज्ञानात्प्रागिति शेषः। तर्हि ज्ञानविधिर्व्यर्थः पुरुषार्थसाधनात्मज्ञानस्य प्रागेव सिद्धत्वादित्याह-वृथेति । किञ्चात्मज्ञाने सति अविद्यातत्कार्यसकलनियोज्यविषयादिभेदनिवृत्तेस्तत्सापेक्षो न ज्ञानविधिः। न वा तदनुष्ठानं संभवतीत्याह-निखिलेति। निदानस्य कारणस्याज्ञानस्य निवृत्तित इत्यर्थः ॥६१॥

नन्वात्मनि परोक्षज्ञाने प्रथमं जातेऽपि तद्विशिष्टज्ञानं विधेयमिति चेत्, किं विशिष्टज्ञानं परोक्षमपरोक्षं वा ? नाद्यः, प्रथमज्ञानेनैव तत्कृत्यसिद्धेस्तद्वैयर्थ्यात् । विदितस्वार्थसम्बन्धशब्दादिभ्य एव प्रथमज्ञानवद् द्वितीयज्ञानस्यापि विना पुंव्यापारमुत्पत्तिसम्भवेन विधिवैयर्थ्याच्च। नापि द्वितीयः । किं कर्तव्यतयाऽवगतं शाब्दज्ञानमेव विधिबलादपरोक्षं भवति, किं वा ततस्तदुत्पद्यते।

विदितता पदके साथ "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः इत्यादि, जो ज्ञानविधि वाक्य हैं, उनके अर्थ ज्ञानसे प्रथम" इतना शेष (भाग) जोड़ना चाहिये। एवञ्च आत्मा जब प्रथमसे विदित है तब ज्ञानविधि व्यर्थ है, क्योंकि पुरुषार्थका साधन आत्मज्ञान प्रथमसे ही सिद्ध है, यह कहते हैं-वृथेति। और आत्मज्ञान होने पर अविद्याकी एवं अविद्याके कार्य समस्त नियोज्य, विषय आदिके भेदकी निवृत्ति हो जाती है, इसलिये नियोज्यादि* की अपेक्षा करनेवाली ज्ञानविधि सिद्ध नहीं हो सकती है। और निदान-मूलकारण अज्ञानकी निवृत्ति हो जानेसे ज्ञानविधिके अनुष्ठानका भी सम्भव नहीं है, यह कहते हैं-निखिलेति ॥६१॥

शंका-विधिवाक्यार्थ ज्ञानसे प्रथम आत्माका परोक्ष ज्ञान हो जानेपर भी आत्माका विशिष्ट (विलक्षण) ज्ञान विधेय है ?

समाधान-वह विशिष्ट ज्ञान क्या परोक्ष है ? या अपरोक्ष है ? प्रथम-पक्ष नहीं कह सकेत, क्योंकि-विधिवाक्यार्थ ज्ञानसे प्रथम सिद्ध परोक्ष ज्ञानसे ही विशिष्ट ज्ञानका कृत्य (प्रयोजन) सिद्ध हो जानसे परोक्ष-ज्ञानरूप विशिष्ट ज्ञानका विधान व्यर्थ है। और शब्द का स्वकीय-अर्थके साथ शक्तिरूप सम्बन्ध, ज्ञान व तात्पर्य, आदिके ज्ञानसे ही प्रथम उत्पन्न परोक्ष-ज्ञानकी तरह द्वितीय परोक्षज्ञानकी भी पुरुष-प्रयत्नके बिना ही उत्पत्तिका संभव होनेसे ज्ञानमें विधि मानना व्यर्थ है। द्वितीयपक्ष (या अपरोक्ष है) भी ठीक नहीं है, क्योंकि-कर्तव्यरूपसे जाना हुआ शाब्दज्ञान ही विधिके बलसे अपरोक्ष होता है ? या विधिसे अपरोक्ष

* नियोज्यः सःकार्यं सः स्वकीयत्वेन बुध्यते। नियोज्य वह है जो-कर्तव्य यागादि कर्मको स्वसम्बन्धित्वेन जानता है।

नाद्यः, तस्य शब्दादुत्पन्नत्वेन तवमते तदयोगात्, अन्यथा प्रथममेवापरोक्षज्ञानं किं न स्यात्। न द्वितीयः, तत्करणस्यासम्भवात्, न ह्यपरोक्षज्ञानकरणमिन्द्रियमात्मन्यस्तीति न ज्ञानविधिसम्भव इत्युपसंहरति—

ज्ञान उत्पन्न होता है ? प्रथमपक्ष ठीक नहीं है, क्योंकि कर्तव्यरूपसे अवगत शाब्दज्ञान, शब्दसे उत्पन्न होने कारण प्रतिवादीके मतमें अपरोक्ष नहीं हो सकता है अन्यथा शब्द जन्यज्ञानको विधिके बलसे अपरोक्ष माने पर, प्रथमही वह शाब्दज्ञान अपरोक्ष क्यों नहीं हो सकता है ? 'अपरोक्षज्ञान, विधिके बलसे उत्पन्न होता है' यह द्वितीयपक्ष भी ठीक नहीं है क्योंकि—अपरोक्ष ज्ञानके उत्पादक करणका असम्भव है। अपरोक्षज्ञानके करण चक्षुरादि-इन्द्रिय, आत्माको विषय नहीं कर सकते हैं, इसलिये ज्ञानविधिका सम्भव नहीं है, अतः इस मतके खण्डनका स्वयं मूलकार उपसंहार करते हैं—

इति न धर्मविशेषसमर्पणं, श्रुतिशिरोवचनैः क्रियते ततः।
भवति धर्मविचारगतार्थता-ऽनवसरः परमात्मविचारणे ॥६२॥

इसप्रकार ज्ञानको विधेय न होनेसे वेदान्त-वाक्य, उपासनादिरूप धर्म विशेषका निरूपण नहीं करते हैं, अतः धर्मविचारसे परमात्म-विचारके चरितार्थताका अवसर प्राप्त नहीं हो सकता अर्थात् ज्ञानमें विधिका सम्भव न होनेसे ज्ञानमें विधि नहीं है, अतः परमात्मविचार, धर्म विचारसे पृथक् ही करना चाहिये ॥६२॥

इतीति। न धर्मविशेष समर्पणं, विधेयज्ञानमेवावान्तरो धर्मः। तस्य च निर्विषयस्यानुपपत्तेस्तदाकाङ्क्षयाऽऽत्मानं व्युत्पादयद्भिर्वेदान्तवचनैर्विध्येकवाक्यतयाधर्मविशेषसमर्पणं क्रियत इति

यहाँ यह भावार्थ है—पूर्वमीमांसाके मतमें 'दर्शपौर्णमासाभ्यांयजेत्' इत्यादि विधिसाध्य अपूर्व मुख्यधर्म है। इस मुख्यधर्मका साधक होनेसे दर्शपौर्णमासादि कर्म भी धर्म कहा जाता है। दर्शादिकर्मोंका कर्ता आत्मा (जीव) है, इसलिये कर्माङ्गत्वेन आत्मा भी अवश्य ज्ञातव्य है, अत आत्मज्ञान भी अवान्तर धर्म है। अत एव 'आत्मावाऽरे द्रष्टव्यः' इत्यादि श्रुतिवचन आत्मज्ञानरूप अवान्तर धर्मका विधान करते हैं। सो आत्मज्ञान निर्विषयक नहीं हो सकता है, अतः विषय की आकाङ्क्षा होनेपर सम्पूर्ण वेदान्त (उपनिषद्) आत्माके स्वरूपको व्युत्पादन करते हैं। इसप्रकार समग्र वेदान्त वाक्योंके साथ विधिवाक्यकी एकवाक्यता होनेसे सम्पूर्ण वेदधर्म विशेषका ही समर्पण(उपदेश) करता है। अतः ध

यन्मतं तन्न । ततोऽपि परमात्मविचारे धर्मविचार गतार्थताया अनवसरो भवतीत्यर्थः । तथाच जैमिन्यादेः प्रागस्मदुक्त एवाशय इति भावः ॥ ६२ ॥

विचार (पूर्वमीमांसा) से वेदान्त विचार (उत्तर मीमांसा) गतार्थ हो गया है । यह जो मत है सो ठीक नहीं है । क्योंकि इस मतमें भी 'परमात्माका विचार धर्म विचार से गतार्थ हो गया है' यह कहने का अवसर नहीं है । यहां यह तात्पर्य है—वेदान्तमें तीन प्रकारके वाक्य हैं (१) त्वं पदार्थ (जीवात्मा) के प्रतिपादक वाक्य-'हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः' आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः, इत्यादि (२) तत्पदार्थ (ब्रह्म)के प्रतिपादक वाक्य 'सदेवसोम्येदमग्रआसीत्' इत्यादि (३) और जीव व ब्रह्मकी एकता के प्रतिपादक वाक्य-तत्त्वमसि, इत्यादि हैं । एवंच त्वंपदार्थ कर्मकर्ता जीवके स्वरूपका विचार धर्म विचार से गतार्थ होनेपर भी तत्पदार्थ ब्रह्मका विचार, और जीवव ब्रह्मकी एकताका विचार धर्म मीमांसासे गतार्थ नहीं हो सकता है । इसलिये जैमिनि आदि महानुभावोंका आशय, जो हमने प्रथम ५८ श्लोकके व्याख्यानमें वर्णन किया है—वही यथार्थ है ॥६२॥

कथं तर्हि 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः' 'आत्मन्येवात्मानं पश्येत्' इत्यादि विधिविभक्तीनां गतिरिति तत्राह—

शंका—तब 'अरे ! मैत्रेयी ! आत्माका साक्षात्कार करना चाहिये' 'आत्मामें ही आत्माको देखना चाहिये' इत्यादि विधि (द्रष्टव्यः पश्येत्) विभक्तियोंका कैसे निर्वाह होगा ? इस शंकाका समाधान श्लोकसे कहते हैं—

अर्हाद्यर्थे च कृत्यस्मरणमभिमतं पाणिनेः, प्रार्थनादौ;
लिङ्लोडादेश्च वृत्तिः प्रचुरमभिमता पाणिनेर्जैमिनेश्च ।
तस्माद्वेदान्तवाक्ये पठितमपि लिङाद्यन्यथा योजनीयं,
विध्यर्थासम्भवेन स्फुटमुदितनयादेतदन्यागतार्थम् ॥ ६३ ॥

अर्ह (योग्य) आदि अर्थमें 'कृत्य' नामवाले 'तव्य' प्रत्ययका प्रतिपादन पाणिनिमहर्षिको सम्मत है । और प्रार्थना आदि अर्थोंमें लिङ् लोट् आदि प्रत्ययोंकी प्रवृत्ति, पाणिनि तथा जैमिनि महर्षिने प्रचुररूपसे मानी है । इसलिये 'द्रष्टव्यः' 'पश्येत्' आदि वेदान्त-वाक्यमें कहा हुआ लिङ्

आदि प्रत्यय. पूर्वोक्तस्पष्ट कही हुई युक्तियों से विध्यर्थका सम्भव न होने के कारण अन्यथा यानी अर्हादि अर्थमें लगाने चाहिये, अतः यह उत्तर मीमांसा शास्त्र पूर्वमीमांसा शास्त्रसे चरितार्थ नहीं है ॥ ६३ ॥

अर्हेति । 'अर्हे कृत्यतृचश्च' 'विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् लोट् च' इत्यादिपाणिनिस्मरणात्, 'विष्णुरुपांशु यष्टव्यः' इत्यादौ जैमिनीयन्यायाच्च तव्यप्रत्ययादेर्विध्यतिरिक्तार्थत्वं सिद्धं यस्मात्तस्मादुक्तवेदान्तवाक्ये पठितमपि लिङादि, अन्यथा=विधिमन्तरेण अर्हार्थतया योजनीयम् । कुतः ? स्फुटमुदितनयाद् विध्यर्थासम्भवेन । अतः एतद्वेदान्तविचार शास्त्रं धर्मविचारशास्त्रेणागतार्थम् अतस्तद्भगवता 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इत्यारभ्य विचारितम् । भाष्यकारादिभिरपि तदाशयानुरोधेन तदर्थो वर्णित इति मयाऽपि तदर्थाविष्करणाय यत्नः क्रियत इति ॥ ६३ ॥

'अर्ह अर्थमें कृत्य 'तव्य' प्रत्यय तथा तृच् प्रत्यय होता है,' 'विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, संप्रश्न, प्रार्थना,* अर्थोंमें लिङ्, एवं लोट् लकार होता है' इत्यादि पाणिनि महर्षिके सूत्रोंसे, विष्णु जिसका देवता है,ऐसा उपांशु याग करना चाहिये, इत्यादि स्थलोंमें जैमिनिके सूत्रोंसे, तव्य प्रत्यय आदि का विधिसे अतिरिक्त भी अर्थ सिद्ध हुआ है । इसलिये पूर्वोक्त 'द्रष्टव्यः' 'पश्येत्' आदि वेदान्त वाक्यमें कहा हुआ लिङ्, तव्य आदि प्रत्यय अन्यथा यानी विधिके विना अर्ह (योग्य) अर्थमें लगाना चाहिये । क्योंकि पूर्वके श्लोकोंमें कही हुई स्पष्ट युक्तियोंसे वेदान्त वाक्योंमें विधि अर्थका असम्भव है । इसलिये यह वेदान्त विचार शास्त्र धर्म विचार शास्त्रसे चरितार्थ नहीं है। अतः भगवान् वेदव्यासजीने 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इससूत्रसे आरम्भ करके वेदान्त वाक्योंका विचार किया है । और भाष्यकार आचार्य शंकरस्वामी आदि पूर्वाचार्योंने भी भगवान् वेदव्यास सूत्रकारके आशयके अनुसार सूत्रार्थका वर्णन (भाष्य) किया है अतः मैं (सर्वज्ञात्ममुनि) भी सूत्रार्थ-भाष्यार्थ आदिको स्पष्ट प्रकट करने लिये प्रयत्न करता हूँ ॥६३॥

नन्वेवमप्यधिकार्यभावादिदं शास्त्रं नारम्भणीयम् । न तावत्स्वर्गादिकाममुद्दिश्यैतदारम्भः, अग्निहोत्रादिभिरेव तत्सिद्धेः नापि निरतिशय

शंका---अधिकारी का अभाव होनेसे इस शास्त्र (उत्तरमीमांसा) का आरम्भ नहीं करना चाहिये ! स्वर्गादिकी कामनावाला अधिकारी हैं, अतएव उसके लिये इस शास्त्रका आरम्भ किया जाता है, यह नहीं कह सकते; क्योंकि स्वर्गादिकी सिद्धि तो अग्निहोत्र आदि

* विधि—अपनेसे निकृष्ट भृत्य आदिको किसी कार्य के लिये प्रेरणा करना । निमन्त्रण—आवश्यक श्राद्धभोजनादि में दौहित्र आदिको प्रवृत्तकरना । आमन्त्रण,—जैसाचाहो वैसा करो ऐसी आज्ञा करना । अधीष्ट—सत्कारपूर्वक व्यापार । संप्रश्न—किसी एक पक्षके निर्णयके लिये प्रश्नकरना । प्रार्थना—याचना करना ।

विषयभोगार्थिनमुद्दिश्य, तस्याप्युपासनातः सिद्धेः। न च मुमुक्षुरत्राधिकारी, सकल वैषयिकानन्द-विलक्षणे मोक्षे कस्यापि कमानाऽदर्शनात्। अत-एव ब्रह्मजिज्ञासुरत्राधिकारीति निरस्तम्। ब्रह्म-ज्ञानस्यापुरुषार्थस्य कामनाऽयोगान्निरतिशयाभि-लषित स्वर्गादि विरोधित्वाच्च। न चाविरक्तस्य स्वर्गाद्यभिलाषेऽपि विरक्तस्य तदभावान्मुमुक्षा-संभवतीति तदर्थं ब्रह्म जिज्ञासमानोऽत्राधिका-रीति वाच्यम्। स्वर्गादौ निरतिशयप्रीत्यास्पदे कस्यापि वैराग्यासम्भवात्। दुःखमिश्रितत्वात्ततो-ऽपि वैराग्यं युक्तमिति चेन्न। तादृशेऽपि तदधिक-सुखे प्रवृत्तिदर्शनात्, दुःखपरिहारे च यतितव्यं न तु सुखमपि परित्याज्यम्। न चान्यः कश्चिद-

कर्म से भी हो जाती है। निरतिशय विषय-भोगार्थी को उद्देश्य करके शास्त्रका आरम्भ है, यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि निरतिशय विषय भोगकी सिद्धि तो उपासनासे भी हो जाती है, अतः उसके लिये इस शास्त्रका आरम्भ करना व्यर्थ है। इस शास्त्रका मुमुक्षु अधिकारी है, यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि—समस्त विषय-जन्य आनन्दसे विलक्षण मोक्षमें किसी की भी कामना नहीं देखी गई है। अर्थात् लोगोंकी कामना विषय-जन्य सुख में ही देखी जाती है। अतएव इस शास्त्रका ब्रह्मजिज्ञासु अधिकारी है, यह भी पक्ष खण्डित होगया; क्योंकि—ब्रह्मज्ञान पुरुषार्थ (सुखरूप) नहीं है, अतः उसकी कामना नहीं हो सकती है, और निरतिशय, अभिल-षित (अभिलाषाका विषय) स्वर्गादि सुखका ब्रह्मज्ञान विरोधी भी है; अतः ब्रह्मज्ञानकी कामना नहीं हो सकती है।

सिद्धान्ती- संसारसे जो विरक्त नहीं है, उसको स्वर्गादिकी अभिलाषा होने पर भी; जो संसारसे विरक्त है, उसको स्वर्गादिकी अभिलाषा नहीं होती है। उस विरक्तको मुमुक्षा (मोक्षकी इच्छा) हो सकती है, अतः मोक्षके लिये ब्रह्मकी जिज्ञासा करनेवाला इस शास्त्रका अधिकारी है ?

शंकावादी—यह कहना यथार्थ नहीं है, क्योंकि निरतिशय प्रीतिके विषय, स्वर्गादि सुखमें किसीको भी वैराग्य (रागका अभाव) नहीं हो सकता है।

सिद्धान्ती—दुःखसे मिलित होनेके कारण स्वर्गादि सुखसे भी (विषसंपृक्त-अन्नकी तरह) वैराग्य हो सकता है।

शंकावादी— यह भी कहना ठीक नहीं है, क्यों-कि—दुःखसे मिले हुए अल्प दुःखसे मिश्रित अधिक सुखमें भी प्रवृत्ति देखी जाती है। अतः दुःखके परि-हारके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये, न कि—सुखका परित्याग करना चाहिये।

धिकारी संभवतीत्यधिकार्यभावान्नेदमारम्भणीय

मिति तत्राह—

इसीप्रकार इस वेदान्त शास्त्रके लिये अन्य भी किसी अधिकारीका सम्भव नहीं है, इसलिये अधिकारीका अभाव होनेसे इस शास्त्रका आरम्भ नहीं करना चाहिये ?

ऐसी शंका होनेपर सिद्धान्ती अधोलिखित श्लोक से समाधान करते हैं——

एकाहाहीनसत्रद्वयविधिविहितानेककर्मानुभाव-
ध्वस्तस्वान्तोपरोधाः कथमपि पुरुषाश्चिद्दिदृक्षां लभन्ते ।
यज्ञेनेत्यादि वाक्यं शतपथविहितं कर्मवृन्दं गृहीत्वा,
स्वोत्पत्त्याम्नानसिद्धं पुरुषविविदिषामात्रसाध्येयुनक्ति ॥६४॥

'एकाह' 'अहीन' 'सत्रद्वय' आदि यज्ञकी विधियोंसे विधान किये हुए अनेक शुभकर्मोंके प्रभावसे जिनके विविदिषाके प्रतिबन्धक पाप ध्वस्त (नष्ट) हो गये हैं, ऐसे विवेकादिसाधन-सम्पन्न, अधिकारी पुरुष, अनेक जन्मोंके अन्तमें किसी प्रकार पुण्यपुञ्जके परिपाकसे ब्रह्मसाक्षात्कारकी इच्छा प्राप्त कर सकते हैं। शतपथ ब्राह्मणग्रन्थमें स्थित 'यज्ञेन दानेन, इत्यादि श्रुतिवाक्य, विहित, कर्म स्वरूपके बोधक 'यजेत्' इत्यादिरूप उत्पत्ति वाक्यसे सिद्ध, यज्ञादि शुभकर्म समुदाय का अनुष्ठान कराके पुरुषको-साध्य जो एक मात्र परमात्मज्ञान की इच्छा है, उसमें लगा देता है ॥६४॥

एकाहाहीनेति । अयमिह चिद्दिदृक्षाप्रतिलम्भप्रकारः—अनादिप्राग्भवेषु संसरन् जीवः 'कदाचित्तत्र तत्र विशिष्टवर्णाश्रमो भूत्वा यावज्जीव-श्रुतिचोदितानि नित्याग्निहोत्रादीनि सम्यगनुतिष्ठति, ततः कदाचिदीषदासादित परमेश्वरप्रसादादग्निहोत्रादिषु दृढश्रद्धो भवति, तत ईश्वरप्रसादादेवं चिन्तयति, 'मदीयं मनः स्वर्गादिसुखत-

यहाँ चेतनात्मदर्शनकी इच्छा-प्राप्तिका यह प्रकार है—अनादि जन्म मरणादि प्रवाहमें भ्रमण करता हुआ यह जीव कदाचित् उस उस धार्मिक देशविशेषमें श्रेष्ठ वर्ण एवं श्रेष्ठ आश्रममें पैदा होता है, जन्म लेकर 'यावज्जीवं अग्निहोत्रं जुहुयात्' (जब तक जीवे तब तक अग्निहोत्र करे) इत्यादि श्रुतिसे विहित नित्य-अग्निहोत्र-आदि शुभ कर्मोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान करता है। इन शुभ कर्मों के अनुष्ठानसे परमेश्वरकी थोड़ीसी प्रसन्नता प्राप्त करके अग्निहोत्रादि कर्मोंमें दृढ श्रद्धावाला होता है, इसके बाद ईश्वरकी पूर्ण प्रसन्नतासे वह इसप्रकार चिन्तन करता है-"मेरा मन स्वर्गादि सुख और उसके यागादि साधनोंकी ही अभिलाषा करता है, मोक्ष और मोक्षका साधन ज्ञानकी अभिलाषा नहीं करता है, इसमें अदृष्ट पापप्रधान प्रारब्ध'

त्साधनान्येवाभिलषति, न तु मोक्षं तत्साधनं वा ज्ञानं, तत्र चादृष्टमेव केवलं निमित्तमिति तदर्थं यतितव्यम्' इति विविदिषोद्देशेन तान्येव कर्माण्यनुतिष्ठति, ततोऽतिविमलमानसः "तद्यथेह" इत्यादि श्रुतिं "यत्कृतकम्" इत्यादिन्यायं चानुसंधाय ब्रह्मलोकपर्यन्तं कर्मसाध्यं फलमनित्यमिति निश्चिनोति, आत्माच श्रुतिन्यायाभ्यां नित्यानन्द इति च, सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः। ततस्तदर्थं सकलवैषयिक सुखभोगजिहासा पुनः पुनरस्योपावर्तते, नित्ये संभवत्यनित्ये कस्तुष्येत्' इति, तदिदं कर्मफलवैराग्यम्। पश्चाच्छान्ति दान्त्यादि सम्पन्नो दृढतरमोक्षेच्छां करोति, सेयं साधनचतुष्टय सम्पत्तिः। तत इष्यमाणमोक्षसाधनं चिदानन्दस्वरूपात्मज्ञानमिच्छतीति नात्राधिकारी दुर्लभः। तदिदमनेन श्लोकेन सूचितम्।

* एकाहः=एकसुत्याकः क्रतुः। अहीनः--द्वय-

ही केवल कारण है, अतः मोक्ष एवं मोक्ष साधन ज्ञानके लिये ही प्रयत्न करना चाहिये" इसप्रकार चिन्तन करके विविदिषा (ज्ञान-इच्छा) के उद्देशसे पुनः २ उन्हीं अग्निहोत्रादिशुभकर्मोंका अनुष्ठान करता है, इससे अतीव शुद्धमन वाला होकर "तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते, एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते" "जैसे इसलोकमें कृषि आदि कर्मसे सम्पादित सस्य (धान) आदि लोक क्षीण हो जाता है, तैसे पुण्यकर्मसे सम्पादित स्वर्गादि लोक भी क्षीण होता है" इत्यादि श्रुतिकी एवं 'यत्कृतकं तदनित्यम्'। 'जो जो जन्य है सो सो अनित्य है' इत्यादि युक्तियोंकी आलोचना करके "कर्मजन्य फलरूप ब्रह्मलोकपर्यन्त समस्त संसार अनित्य है, तथा श्रुति एवं युक्तिसे आत्मा नित्य आनन्दरूप है" ऐसा निश्चय करता है। सो यही नित्य अनित्य वस्तुका विवेक है। विवेकके अनन्तर इसको आत्म-ज्ञानके लिये समस्त शब्दादि विषयसे जन्य सुखभोगके परित्यागकी इच्छा, बार बार पैदा होती है। "नित्य पदार्थकी प्राप्तिका सम्भव होनेपर अनित्य-पदार्थमें कौन संतुष्ट हो सकता है" यही है—कर्म फलमें वैराग्य। पश्चात् शान्ति (मनका निग्रह) दान्ति (इन्द्रियों का निग्रह) आदि साधनोंसे सम्पन्न हुआ मोक्षकी दृढतर इच्छा करता है। सो यही विवेकादि साधन चतुष्टय की सम्पत्ति है। इसके अनन्तर 'अभिलषित मोक्ष का साधन आत्मज्ञान है' 'ऐसा श्रवण करके चिदानन्द स्वरूप आत्माके ज्ञानकी इच्छा करता है। इसलिये इस शारीरक मीमांसाका अधिकारी दुर्लभ नहीं है। सो यह अधिकारी, इस श्लोकसे सूचित किया है—

एकवार सोमवल्लीका जिसमें कण्डण होता है यानी रस निकाला जाता है उस क्रतुका नाम 'एकाह'

हप्रभृतिद्वादशसुत्यान्तः । सत्रं द्विविधम्, एकमहः समुदायसाध्यम्, यथा द्वादशाहम्, द्वादशाहस्य चाहीनसत्रात्मत्वं 'यजेत' उपयन्ति' इत्युभयश्रुतिबलादवगतम् । किंचित् संवत्सरगणसाध्यम् । उपलक्षणमेतदग्निहोत्रादेः । एतेषां ये विधयस्तद्विहितानि यान्यनेकानि अग्निहोत्रप्रभृतीनि सहस्रसंवत्सरपर्यन्तानि कर्माणि तेषामनुभावो दुरितनिवर्हणसामर्थ्यं तेन ध्वस्तः स्वान्तस्यान्तः करणस्योपरोधो विविदिषाप्रतिबन्धो येषां ते तथा । कथमपि अनेकजन्मव्यवधानेऽपि पुरुषाः साधनचतुष्टय संपन्नाः अधिकारिणः चिद्दिदृक्षामखण्डचैतन्यात्मकप्रत्यग्ब्रह्मसाक्षात्कारेच्छामित्यर्थः ।

नन्वग्निहोत्रादेः पुन्दिदृक्षाप्रतिबन्धकदुरितनिवर्तकत्वं कुतोऽवगतं, येन तदर्थमनुतिष्ठेयुः । न तावत्प्रत्यक्षादिना तदवगन्तुं शक्यम् । नाप्यग्निहोत्रादिवाक्येन, तत्र तद्वाचकपदाभावात्तत्राह—यज्ञेनेति । 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदि-

है । दो दिनसे लेकर बारह दिन पर्यन्त जिसमें सोमवल्लीका कण्डण होता है, उस क्रतुका 'अहीन' नाम है जिसमें अनेक यजमान हों, एवं यजमान ही ऋत्विक् हों, उस कर्मविशेषका नाम 'सत्र' है । 'सत्र' दो प्रकारका है—एक, अनेक दिनोंके समूहसे साध्य है, जैसे द्वादशाह (बारह दिन पर्यन्त इसमें अनुष्ठान होता है) 'यजेत्' 'उपयन्ति' इन दो श्रुतियोंके बलसे यह द्वादशाह 'अहीन सत्ररूप है' यह जाना गया है । और दूसरीप्रकारका सत्र कुछ वर्षोंके गणसे साध्य है। यानी अनेक दिन साध्यकर्म व अनेक वर्ष साध्य कर्मका नाम सत्र है। अग्निहोत्रादि-अन्य शुभकर्मोंका यह एकाहादि कर्म उपलक्षण है । इन शुभकर्मोंकी जो विधियाँ हैं, उनसे विहित जो अग्निहोत्रसे लेकर सहस्र संवत्सर (हजार वर्ष) पर्यन्त साध्य जो अनेक कर्म हैं, उनके अनुभावसे पापनाश करनेकी सामर्थ्यसे अन्तःकरणका उपरोध यानी विविदिषाका प्रतिबन्धक पापोंका ध्वंस (नाश) जिन्होंका हो गया है, वे विवेकादिचार साधनोंसे सम्पन्न अधिकारी पुरुष किसीप्रकार अनेक जन्मों के अन्तमें पुण्यपुञ्जके परिपक्व होने पर भी चिद्दिदृक्षा यानी अखण्ड चैतन्यरूप प्रत्यक् ब्रह्मके साक्षात्कार की इच्छाको प्राप्त करते हैं यह अर्थ है ।

शंका—"अग्निहोत्र आदि शुभकर्म, परमात्माके साक्षात्कारकी इच्छाके प्रतिबन्धक पापके निवर्तक हैं" यह किस प्रमाणसे जाना गया ? जिससे पाप निवृत्ति के लिये अग्निहोत्रादिका अनुष्ठान करें । प्रत्यक्षआदि प्रमाणसे यह जानना शक्य नहीं है । और अग्निहोत्रादि कर्मके बोधक वाक्य प्रमाणसे भी यह जानना अशक्य है, क्योंकि—उन वाक्योंमें भी पापकी निवृत्ति के बोधक पद नहीं हैं ।

समाधान—"इस प्रसिद्ध अत्यन्त समीपवर्ती आत्मा

पन्ति यज्ञेन' इत्यादिवाक्यम्। शतपथविहितमिति। शतपथग्रहणं विनियोजकवाक्येन विनियोज्यकर्मणः प्रत्यासत्तिज्ञापनार्थम्। नन्वग्निहोत्रादेः स्वर्गकामयावज्जीवादिवाक्येन तत्र तत्र विनियुक्तस्य कथं विविदिषायां विनियोगः, विनियुक्त विनियोगविरोधात्तत्राह—स्वोत्पत्तीति। स्वस्याग्निहोत्रादेर्यदुत्पत्त्याम्नानं कर्मस्वरूपमात्रबोधकं वाक्यं तत्सिद्धमित्यर्थः।

को ब्राह्मण लोग, वेदाध्ययन, व यज्ञ आदि शुभकर्मोंसे जाननेकी इच्छा करते हैं" इत्यादि श्रुतिवाक्य ही प्रतिबन्धक पापकी निवृत्तिमें प्रमाण हैं। श्लोकमें शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थका कथन, कर्म प्रतिपादक 'यजेत्' इत्यादि विनियोजक वाक्यसे विनियोज्य कर्मका सम्बन्ध ज्ञापन के लिये है।

शंका—'स्वर्गकामो यजेत्' स्वर्गकी कामनावाला यागकरे 'यावज्जीवं अग्निहोत्रं जुहुयात्' जीवनपर्यन्त अग्निहोत्र करे इत्यादि श्रुति वाक्योंसे अग्निहोत्रादि कर्म, उस उस स्वर्गादि फलके सम्पादनमें विनियुक्त हैं, अतः अग्निहोत्रादि कर्मोंका चेतन-साक्षात्कारकी इच्छामें कैसे विनियोग (उपयोग) हो सकेगा? क्योंकि—एक स्थल में विनियुक्तका अन्य स्थलमें विनियोग करनेसे विरोध होता है।

समाधान—अग्निहोत्रादि कर्मोंकी उत्पत्तिको कथन करनेवाले एकमात्र कर्मस्वरूपके बोधक वाक्योंसे स्वर्गादिमें विनियुक्त कर्मोंका भी पुन्दिदक्षामें विनियोग सिद्ध है। इस विनियोग सिद्धिके प्रकारको दिखाते हैं—

अग्नि होत्रादिकं हि प्रथममग्निहोत्रं जुहोतीत्यादिवाक्यैः फलविशेषशून्यमेव विधीयते। पश्चाद्वाक्यान्तरेण तदपेक्षितफलविशेषे तस्य सम्बन्धः प्रतिपाद्यते। एवं च तद्वदेव विविदिषायामपि तस्य सम्बन्धो न विरुध्यते, विनियोजकवाक्यानां तुल्यकल्पत्वात्। एवं च विषयसौन्दर्यज्ञानलभ्यायामिच्छायां कर्मणः साक्षात्साधन

'अग्निहोत्रं जुहोति' इत्यादि श्रुति वाक्योंसे फल बिषेश रहित केवल, अग्निहोत्रादि कर्मका ही प्रथम विधान किया जाता है। पश्चात् फल बोधक अन्य—श्रुति वाक्यसे कर्म अपेक्षित फल विशेषमें कर्मका संबंध प्रतिपादन किया जाता है। इसप्रकार स्वर्गादि फल विशेषकी तरह विविदिषारूपफल विशेषमें भी अग्निहोत्रादि कर्मोंका सम्बन्ध विरुद्ध नहीं हो सकता है, क्योंकि—विनियोजक वाक्योंका प्रामाण्य समान है। अर्थात तत्तत् स्वर्गादि फलकी कामनासे किये हुये कर्म स्वर्गादिके साधन हैं, स्वर्गादि कामनाको छोड़कर विविदिषा केलिये किये हुये कर्म विविदिषाके साधन हैं एवं विषयके

त्वासम्भवेन सामर्थ्यात्प्रतिबन्धकनिवृत्तावेव साधनत्वं कल्प्यत इति। पुरुषः=परमात्मा। मात्रशब्देन तस्य ज्ञानादिपर्यन्तव्यारं वारयति। एवं च नाधिकार्यभाव इति भावः ॥ ६४ ॥

सौन्दर्य ज्ञानसे होनेवाली इच्छामें कर्मकी साक्षात् साधनता का असम्भव होनेसे, अर्थापत्ति प्रमाणके बलसे प्रतिबन्धक पापकी निवृत्तिमें ही कर्म साधनताकी कल्पनाकी जाती है। पुरुषका अर्थ परमात्मा है। श्लोकके मात्र शब्दसे अग्निहोत्रादि कर्मोंकी ज्ञानादिपर्यन्त प्रवृत्तिका निरास किया जाता है। इसप्रकार अधिकारीका अभाव नहीं है, यह भाव है ॥६४॥

एवं विषयप्रयोजनसंभावादगतार्थत्वाद्विशिष्टाधिकारिलाभाच्च ब्रह्मविचारशास्त्रमारम्भणीयमित्युक्तम्। इदानीं गुरुशिष्यसंवादमुखेन शास्त्रं प्रवर्त्तयितुं जिज्ञासासूत्रगताथशब्दोपात्तविशिष्टाधिकारिणः 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' इतिदर्शितं गुरूपसदनमाह—

इसप्रकार विषय और प्रयोजनका सम्भव होनेसे और पूर्वमीमांसासे इस उत्तर मीमांसाको गतार्थ नहोनेसे एवं विशिष्ट (चतुष्टय साधनवाला) अधिकारीका लाभ होनेसे इस ब्रह्मविचार शास्त्रका आरम्भ करना चाहिये यह कहा। अब गुरु-शिष्यके संवाद द्वारा शास्त्रमें प्रवृत्ति करानेके लिये 'अथातोब्रह्मजिज्ञासा' सूत्रमें स्थित 'अथ' शब्दसे कहे हुए विशिष्ट अधिकारीका "ब्रह्मात्मज्ञानके लिये विवेकादिसाधन सम्पन्न अधिकारी हाथमें काष्ठादि उपहार लेकर श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरुके समीप ही जावे" इस श्रुति प्रतिपादित गुरुके समीप गमनको कहते हैं—

उपससाद चतुष्टयसाधनो, निशितबुद्धिरशुद्धिपरिक्षयात्।
विविदिषुर्विहितैर्विविधाध्वरै र्विदितवेद्यतमं विधिवद् गुरुम् ॥ ६५ ॥

अनेक यामादि-शुभ कर्मोंके अच्छी प्रकार अनुष्ठान द्वारा पापादिरूप अशुद्धिका क्षय होनेसे जिसकी बुद्धि एकाग्र एवं निर्मल है, एवं जो विवेकादि चार साधनोंसे युक्त तथा तत्त्वज्ञानकी इच्छावाला है, ऐसा कोई एक विरला अधिकारी शिष्य—ब्रह्मतत्त्वका जिसे अच्छी प्रकार साक्षात्कार है, ऐसे ब्रह्मनिष्ठ-श्रोत्रिय गुरुके समीप विधिपूर्वक—प्राप्त हुआ है ॥ ६५ ॥

उपससादेति। प्राप्तवानित्यर्थः। विवेकादिचतुष्टयं ब्रह्मज्ञानसाधनं यस्य स चतुष्टयसाधनः। निशिताऽतिसूक्ष्मा ब्रह्मैकाकारतायोग्या बुद्धिर-

उपससाद यानी प्राप्त हुआ है। ब्रह्मज्ञानका साधन, विवेकादि चतुष्टय जिसको प्राप्त है उसका नाम यहां 'चतुष्टय साधन' है। निशित यानी अतिसूक्ष्म—एकमात्र ब्रह्माकार वृत्तिकी योग्यतावाला अन्तःकरण जिसका है, वह 'निशितबुद्धि' है। अच्छी प्रकारसे अनुष्ठित—विविधयज्ञादि शुभ कर्मोंके द्वारा अशुद्धि (पाप-

सुखकी खोज

(लेखिका—अगजगसेविका बहिन जयदेवी)

मालती ललिताका सम्बाद।

मालती—आश्चर्य है ? महान् आश्चर्य है ! प्रायः सभी प्राणी सुखके लिये प्रयत्न करते हैं, किन्तु फिर भी सुखी नहीं होते, सुखी हों भी कहांसे ? संसारके भोगोंमें ही सुख प्राप्त करना चाहते हैं। परन्तु संसारके सर्वभोग चंचल, क्षणभंगुर और नाशवान् हैं। संसारका कोई पदार्थ स्थिर नहीं है, तब उनसे सुख कैसे मिले ?

हे बहिन ! देखनेमें आता है। चाहे कोई कितना बुद्धिमान्, कुटुम्बवान् और धनवान् हो, परन्तु सुखी कोई नहीं। सब किसीको कोई-न-कोई चिन्ता अवश्य लगी हुई है। यानी आधिभौतिक, आधिदैविक अध्यात्मिक दुःखोंसे कोई प्राणी छुटा हुआ नहीं है। तब सुखी कहांसे हों। एकबार संसारसे दुःखी होकर मैंने सोचा कि—त्यागमें सुख होगा। तब सब त्यागकर योगिनी बनकर घरघर अलख जगाती फिरी, गलियों, कूचोंमें। किन्तु वहां पर भी सिवाय हल्लेगुल्लेके और निन्दा स्तुतिके कहीं सुखको न पाया। कभी मालासे कहती कि, हे माला तू ही उस सुखको बतला। जब माला कुछ न बोलती। तब कभी हँसती कभी रोती और कभी घबराहटके कारण अपनी, पराई कुछ खबर न रहती कि क्या हो रहा है क्या कर रही हूँ ? कहां जाऊँ ? कहां देखूँ ? किसे पूछूँ ? किसे देखूँ ? किधर जाऊँ ? कहां ढूँढू ? क्या करूँ ? कैसे उस सुख को पाऊँ ? जो कभी नष्ट न हो। चलूँ और कहीं खोज करूँ। खोज करनेसे कहीं न कहीं मिलेगा।

घूमती हुई मसजिदमें जा पहुँची वहांपर क्या देखा, कि—सिवाय रोजनमांजोंकी चर्चाके और कुछ नहीं। वहांसे चलकर पाठशालामें पहुँची। सोचा कि—वहांपर मेरा अभीष्ट मुझे मिलेगा। किन्तु वहांपर और ही दशा देखी। पुस्तकोंपर पुस्तकें खुल रही हैं। कोई विद्यार्थिन हँस रही है। कोई पाठ याद न होनेसे आंसू बहा रही है। वहां भी सिवाय शोरगुलके कुछ न पाया। तब फिर वहांसे चलकर मन्दिरमें आई। वहां पर भी घण्टों और मूर्तिके सिवाय कुछ न देखा। तब घबराकर रो-रोकर पुकारने लगी। तब मनने कहा क्यों घबराती है। चल अब तीर्थोंकी सैरकर वहांपर सुख मिलेगा। तब तीर्थोंपर जाकर अनेक प्रकारके तीरथ, व्रत और दर्शन, स्पर्शन किये। परन्तु शान्ति वहांपर भी न मिली। निराश हो वहांसे भी लौट आई। तीर्थोंकी इच्छा छोड़ फिर बन पहाड़ोंकी राह ली, वर्षां पहाड़ोंकी गुफाओंमें बैठो, बनोंमें फिरी परन्तु, शान्ति वहांपर भी न मिली, तब बन पहाड़ों को छोड़ बस्ती यानी देहातोंमें आई। वहां पर और ही कुतूहल देखा, वर्षा न होनेके कारण बेचारे किसान दुःखी हो रहे हैं। दिन रात कुयें चला २ कर खेतीको सींच रहे हैं। बेचारे गऊके जायांपर आपत्ति आरही है। किसानोंको न खानेकी सुध है न पीनेकी सुध है। माताकी नाई खेतीकी रक्षा कर रहे हैं। कभी हरट चलाते हैं, कभी पशु पक्षियोंसे रक्षा करते हैं। स्त्री बच्चे सब उसमें ही लगे हुए हैं, फिर भी बेचारोंको पेटभर खानेको नहीं मिलता। इन्द्रराजाकी ओर टक-टकी लगाये देख रहे हैं। परन्तु इन्द्रराजा नहीं सुनता, क्या करें ? कुछ बस नहीं चलता था, जो पानी बरषा लें। जिनके पास बैल हल और कुँआ ईश्वरने दिया है। वे तो अपने शरीर द्वारा परिश्रम करके पेटके लिये कुछ प्राप्त कर रहे हैं और कर भी लेंगे। परन्तु जिनके पास बैल आदि नहीं हैं, वे तो निराश हो सांस भर

रहे हैं। देहातोंकी ऐसी दशा देख अपने कर्मको ठोक वहांसे भी चलदी, कि यहां सुख कहां, यहां तो आप ही दुःखका राज्य हो रहा है फिर शहरमें आई। वहांपर भी ऐसा ही कुतुहल देखा। सब दिन रात भाग रहे हैं मोटरोंके पीछे मोटरें भागी जा रही हैं। तांगोंके पीछे तांगे भागे जारहे हैं। बाइसिकिलें निराली शानमें भागी जारही हैं इत्यादि। बाजारमें प्रत्येक स्थानपर भीड़के कारण सिपाही खड़े हुए हैं। तांगे मोटर और बाईसिकल इत्यादिका बचाव करनेको कि-कहीं परस्पर टकरा न जायें। फिर भी कभी, २ तांगे मोटर इत्यादि टकरा ही जाते हैं और बेचारे नवयुवकोंके प्राणघात हो ही जाते हैं।

हे बहिन! मैंने तो सर्वत्र सुखको ढूँढ़ा, परन्तु, कहा सुख न मिला। जहां कहीं भी देखा वहांपर तीनों तापोंका राज्यही देखा। अब बहुत ही निराश हूँ, अधीर हूँ, और व्याकुल हूँ. घबराहटके कारण प्राण उड़ा जाता है, परन्तु कर्मवश निकलता नहीं अब तुम्हीं भूमा सुखको बताओ। जैसा कि श्रुति कहती है-भूमा वै सुखं ना अल्पे सुखमस्ति यदल्पं तन्मर्त्यं। अर्थात् भूमा ही सुखरूप है, अल्प यानी तुच्छमें सुख नहीं है, जितना अल्प यानी दृश्य है, वह सब नाशवान् है, यानी मरणशील है। जो आपही मृत्युके मुखमें हो, वह दूसरोंको कैसे सुखी कर सकता है? नहीं कर सकता। वह तो बिचारा आपही पराधीन है। सुखी तो वही कर सकता है जो स्वयं स्वतन्त्र हो।

ललिता प्रसन्न होकर बोली—हे बहिन! जो तू कहती है, सब सत्यही है। जिनको जैसी खोज, यानी उत्कण्ठा और लगन होती है, वही जन उस सुखको प्राप्तकर सकते हैं। और जिनको संसारमें सुख प्रतीत होता है। वे जन उस सुखको नहीं प्राप्तकर सकते। कहावत ठीकही है—

जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
हों बौरी ढूंढन गई, रही किनारे बैठ॥

हे बहिन! क्यों अधीर होती है? क्यों व्याकुल होती है? अब तेरा कष्ट दूर होनेका समय आगया है। तेरा मन तपते २ शुद्ध होगया है। जब तक मन शुद्ध नहीं होता। तबतक मनुष्यको न सुखकी खोज होती है, और न सुख यानी शान्ति मिलती है। ऐसा नियम है। तेरे अन्तःकरणके मल यानी पाप तेरे नेत्रोंके द्वारा अश्रु बनकर सब बाहर निकल गये हैं। अब तू सावधान होकर सुन।

जिस सुखको खोज रही है, वह सुख जहां २ तूने खोजा वहां कहांसे मिलता क्योंकि वह सुख कहीं बाहर नहीं है। वह तो तेरा आत्मा तेरे हृदयमें ही छिपा तेरा स्वरूपही है। जब तक तू क्या कोई भी मनुष्य अपनेमें उस सुखको नहीं प्राप्तकर लेता। तबतक चाहे जहां भटकता फिरे सुखरूप आत्मा कदापि न मिलेगा, चाहे सारी आयु समाप्त हो जाय।

अब तू अपनेमें ही सुखको देख। जब तू अपनेमें उस सुखको प्राप्त कर लेगी। तब वह बाहर भी सर्वत्र सुख ही सुख दिखाई देगा। अब तक जो तूने सबको दुःखी देखा वह वास्तवमें कोई दुःखी नहीं है। सब सुखी हैं। यदि वे सुखी न होते तो बिना सुखके कोई क्षण भर भी नहीं जी सकता था। उसी सुखके आभाससे सब जी रहे हैं, चाहे जीवपर कितना भारी से भारी कष्ट हो तब भी मरनेसे डरता है। इससे प्रतीत होता है कि-सब सुखी हैं। तुझे अपने दुःख करके वे सब भी दुःखी ही प्रतीत हुए। यह नियम ही है कि—जग कैसा? जैसेको तैसा। यदि संसारमें सबको दुःख ही दुःख प्रतीत होता, तो फिर संसारका कोई कार्य ही नहीं होता और ऐसा दुःखरूप जगत ईश्वर बनाता ही क्यों। ईश्वरका कोई भी कार्य बिना प्रयोजन अथवा दुःखरूप नहीं है। जब तक मनुष्यको ज्ञान नहीं होता तबतक ही जगत दुःखरूप दिखाई देता

है, वास्तवमें दुःख कोई वस्तु नहीं है । और सुखरूप ईश्वरके बनाये जगत्में दुःख कहांसे हो जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है यह नियम है। परन्तु ईश्वरने जगत क्यों और कैसे बनाया इन सब बातोंके बिना जाने जगत्में, दुःखकी प्रतीति होती है। नहीं तो सुख सर्वत्र भरपूर है। इस विषयमें ब्रह्मनिष्ठ महात्माने क्या अच्छा पद कहा है—

सुखको कहां है ढूंढता, तू आप सुख भंडार है।
तेरे ही सुख आभासको, सुख मानता संसार है॥
तजदे विषय सुख अहि तुझे कल्याण अपना इष्ट है।
है श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ तू, पर चाह करके भ्रष्ट है॥

शंका—हे बहिन! जब वह सुख ऐसा है तब सब उसे क्यों नहीं प्राप्त करते? क्यों नहीं ऐसे सुखकी खोज करते। क्यों इस असार-संसारमें बेकार घूमते रहते हैं?

समाधान—हे बहिन! सब उसे प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि उस सुखके लिये खोज, जब ही मनुष्य करता है, जब कि—उसके कई जन्मोंके पुण्य कर्म फल देनेको सन्मुख होते हैं। बिना पुण्य कर्मोंके मनुष्य कुछ नहीं कर सकता, प्रथम तो बिना पुण्य कर्मोंके मनुष्यत्व ही मिलना असम्भव है। यदि मनुष्यत्व मिल भी गया। तब फिर उस सुखकी खोज होना अति दुर्लभ है। क्योंकि किसी बड़े भाग्यवालेको जन्ममरण से छूटनेकी इच्छा होती है। जब जन्म, मरणसे छूटने की इच्छा होती है। तब इस असार संसारसे मुखमोड़ कर ईश्वर भजनमें लगता है। जब ईश्वर भजन करने से अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। तब उसके प्राप्त करनेकी खोज होती है। जब खोज होती है। तब उसके बताने वाले गुरुकी शरणमें जाता है।

गुरू जब देखते हैं कि यह अधिकारी है। तब उसको उपदेश देते हैं। देख? जिसकी तू खोजमें है है वह सुख बाहर नहीं है वह तो तेरा आत्मा, तेरा स्वरूप, यानी वह तू ही है। यह देह तू नहीं है इससे भिन्न चेतन सत्ता जो है, वही तू है। अर्थात् गुरुने जहां 'तत्त्वमसि' कहा शुद्ध शिष्य समझ लेता है—अहं ब्रह्मास्मि। बस इतना समझनेंही सदाके लिये सुखी हो जाता है। इसमें यह दृष्टान्त है।

एक सेठ था उसने अपने बही खातेमें लिखा था कि—जमुना गंगाके बीचमें सवालाख धन गढ़ा हुआ है। जब आवश्यकता हो तब खोदकर निकाल लेना। कुछ दिनों पीछे सेठ मर गया। उसके पुत्र पौत्र कुछ दिनों तक तो आनन्दसे रहे। पश्चात् उनके घरमें धनाभाव हो गया। यानी बहुत ही गरीब हो गये। एक दिन अपने पिताका बई खाता देखा। उसमें लिखा था कि जमुना गंगाके बीचमें धन गड़ा हुआ है ले लेना। ऐसा देख बड़े प्रसन्न हुए। परन्तु अब जमुना गंगाके बीचका गढ़ा धन कैसे और कहां मिले। यह और भी अधिक चिन्ता हो गई। जिससे भी पूछें वही कहे कि—भाई! इस धनकी आसा छोड़ो, यह क्या मिलनेवाला है। एक दिन जब पुण्य कर्मोंका उदय हुआ, तब अकस्मात् पिताके सामनेका मुनीम आ गया। जब उसको बही खाता दिखाया और पूछा कि—जमुना गंगाके बीच भी कोई धन गाढ़ता होगा। यह समझमें नहीं आता। तब मुनीमने कहा। अरे भाई! तुम्हारे पिताके पास दो गऊयें थीं, एकका नाम जमुना और एक नाम गंगा था और वे इस कोठरीमें बंधा करती थीं। यहां पर खोदो। वहां पर खोदनेसे धन निकल आया और वे निर्धन सुखी हो गये। इसका दार्ष्टान्त इस प्रकार है—

पुण्योंके उदय होनेसे जिस भाग्यशालीको उस सुखकी खोज होती है! तब मुनीमकी जगह सद्गुरु मिल जाता है। जमुना गंगा जो यह दोनों नाड़ियां ईड़ा और पिंगला नामकी हैं। जो बाई, दांई नासिकामें चलती हैं। इनके बीचमें खोदनेसे यानी सुषुम्नामें

ध्यान करनेसे। जब ध्यान करनेसे अज्ञानरूपी पत्थर हट जाता है। तब वह सुखरूप आत्मधन भूमा अपने पासमें ही मिल जाता है। वही तेरा आत्मा है, यानी वह तूही है देहाध्यास ही तेरे स्वरूपको छिपानेका पत्थर है। इसको जड़मूलसे काट दे। तब तू सर्वत्र भर जायगी। महान् हो जायगी, सुखी हो जायगी।

इसप्रकार ललिताके वचनोंको सुनकर मालतीको सुखकी प्राप्ति हुई और वह सदाके लिये कृत्यकृत्य हो गई। ललिताको धन्य धन्य कहने लगी। बोलो सुखरूप अपने आत्म सुखकी जय।

सच कहा है।

आत्मा सुखका सार है नहिं दुःख लव लेश।
अजरामर पद है यही, काटत भवभय क्लेश॥
काटत भवभय क्लेश, पार नौका बन करता।
जन्म मरण दे काट, जेलमें नाहि पटकता॥
भज आत्म, त्याग भयरूप अनात्मा।
अन्य माहि सुख नाहि, सिन्धु सुखमय है आत्मा॥

सुमन-सुरभि

(लेखक—श्री महन्त स्वा० हरिहरगिरिजी महाराज बकुलहर)

नटनागर!

तेरे रङ्गमंच पर बहुतसे नट अपना २ नाट्य दिखाकर चले गये, आपने उन्हें इसीसंसारमें महान पुरस्कार दिये, और तो कहाँ तक कहूँ, अपने कृत्य पर उन्होंने परम पद-मोक्ष तक को भी प्राप्त करलिया, बहुतसे तो नटनागरके ही स्वरूप बन गये। प्रभो! इस नाट्यशालामें मैं आपको ८४ लाख नाटक दिखा चुका, नाना रूप धर चुका। क्या आपको मेरा कोई रूप पसन्द आया? यदि आया तो, प्रभो! इस अकिंचनको आप मोक्षका ही इनाम दीजिये। यदि कहो कि आपको मेरे अभिनय पसंद नहीं हैं तो, आजसे मेरा इस दुनियाके रङ्गमंच पर आना बन्द कर दीजिये। मूर्ख जीव! यदि तुझे मांगनेका ही शौक है तो प्रभुसे यही मांग, धन-कलत्रादि सांसारिक पदार्थों को तू अपने कर्मसे ही प्राप्त कर सकता है।

× × ×

"उठा तो था वह ख़याल दिलमें,
कि सिर्फ यादे खुदा करेंगे।
मगर वह फौरन ख़याल बदला-
मिली न रोटी तो क्या करेंगे॥"

यही विचार तो हमारी उन्नतिके बाधक हुआ करते हैं। अज्ञ! जिस प्रभुके नामपर तू प्रमुख प्रपंच (गृह) को त्यागकर बैठेगा, क्या वह तेरी रक्षा न करेगा?। भैय्या! उसने तो मनुष्योंके लिये असंख्य प्रतिज्ञायें करीं हैं। जैसे:—"योगक्षेमं वहाम्यहम्" "नमे भक्तः प्रणश्यति" "तेषामहंसमुद्धर्ता मृत्युसंसार सागरात्" इत्यादि। परन्तु प्यारे! तू अपने मनको साक्षीकर कह, क्या तूने प्रभु-प्रेमके लिये कोई प्रतिज्ञा की? यदि नहीं तो आज ही यथेष्ट प्रणव जपकी प्रतिज्ञा कर, तेरा जन्म सफल हो जायेगा। अरे! तू अपने भरण पोषणकी चिन्ता मतकर क्योंकि—'का चिंता बदि जीवने हरिरसौ विश्वम्भरो गीयते।"

× × ×

"का चितवत नित चाम चमार,
ये चाम चमारके काम का नाहीं।"

फैशनमें प्रमत्त पुरुषो! तुम अपने शरीरके सजाने में लाखों रुपये खर्च कर चुके, परन्तु इसने कभी तुम्हारा साथ दिया? विचारो, दो दिन ज्वराक्रान्त होनेसे तुम्हारा मुखकमल महीनोंके लिये मुरझा जाता है, अवयव कार्यभारमें असमर्थ हो जाते हैं, परन्तु

फिर भी आप इसकेही चाकर बने रहते हैं। प्यारे प्रभुके बनो, वही अन्तमें काम आवेगा। पुत्र पर यदि आसक्ति करते हो तो वही पुत्र चितामें रखकर आपका शिर फोड़ता है। इसका मतलब यही है कि मूर्ख! संसारमें तू सिर फोड़ने लायक ही है, क्योंकि तूने चमड़ी पर ही दमड़ी खर्च की प्रभु पर नहीं। इसलिये प्रभुकी सृष्टिमें तू अयोग्य है।

"अहंकार विमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते" सुनते हैं कि—कभी विन्ध्याटवीमें घूमते हुये भर्तृहरि से सुलेमान की मुलाकात हुई थी वह हाथसे कोई खानेकी वस्तु खाता जाता था, और दौड़ता भी जाता था। भर्तृहरिने उसकी साधुताईकी परीक्षा लेनेके लिये उसके पैरमें पैर मारा वह गिर गया, और उठकर फिर भागा। दुबारा फिर लात मारी, और वह गिरकर फिर आगे चल दिया, पीछेको फिर कर भी नहीं देखा। तीसरी बार फिर लात मारी, वह गिरा और उठ कर पीछे देखाः—कहने लगा—'जो तू देखता है वह यहां नहीं है"। (अर्थात् मेरे अन्दर क्रोध नहीं)। परन्तु इतने पर भी भर्तृहरिने कहा कि "यहां नहीं है" इतना और त्यागदे तब साधुताई है। सच्चे फकीरने गम्भीर भाव से कहा यह आपसे सीखा। यह है विनय।

× + ×

"पद्म पत्र मिवाम्भसा" अर्थात् संसार सागर में कमल पत्र की तरह रहो। यानि अपना कार्य साधन करते हुये उसमें लिप्त न हो तभी चतुराई है। पुराणों में एक कथा आती है कि—एक बार शुकदेवमुनि राजा जनक के पास उपदेश लेने गये। दरवाजे पर पहरेदारों ने रोका कि महाराज हम राजा साहब से पूछ आवें। नौकरने अन्दर जाकर सब वृत्तान्त राजाको सुनाया, राजाने असली जिज्ञासु की परीक्षा करने के लिये कहा कि—बैठा रहने दो। क्योंकि वह समझते थे कि-यदि कोई वैसाही होगा तो लौट जायगा। इसलिये गुरुओंका कर्तव्य है कि—वह शिष्यको अच्छी तरह परखकर पास रक्खें, नहीं तो लोभी लालची बहुत मिलेंगे। अस्तु शुकदेवजी जिज्ञासु थे बैठे रहे। तीन दिनबाद विदेहने उन्हें बुलाया वह उस वक्त रानियों में विहार कर रहा था। शुकदेवजीको ग्लानि हुई कि यह क्या उपदेश देगा? जनक पहिचान गये। उन्होंने एक कटोरा (प्याला) पानी का भर शुकदेवजीके हाथमें दिया और कहा कि—इसका एक बून्द पानी न गिरने पावे, आप महलके चारों ओर घूमकर आवें और सब हाल मुझे सुनावें। वैसा ही किया मगर पानी गिरनेसे डरे हुये शुकदेवने सिवाय कटोरेके और कुछ नहीं देखा। जनकके पूछने पर उन्होंने कहा कि—मैंने महल वगैरह कुछ नहीं देखा मेरा तो ध्यान कटोरे पर था। जनकने कहा मैं संसारमें रहता हूँ। कटोरे रूप ब्रह्मके चिन्तनके आगे और कुछ ध्यान नहीं रहता। जैसा आप पात्र लिये चलनरूप क्रिया करते थे। वैसे ही मैं सांसारिक कृत्य करता था। यह है जलमें कमलकी तरह रहना।

× × ×

"सन्तोषः परमं सुखम्"

जब तक हमारे दिलमें सन्तोष रहता है, तो हम बहुत प्रसन्न रहते हैं। मगर जहां तृष्णाके अंकुर उगे कि—हम बेचैन हो जाते हैं। क्योंकि लोभ तो आगकी चिनगारी है, उसे तुम जितना पूरा करोगे, वह फूँस प्राप्त होने पर अग्नि की तरह बढ़ता जाता है। आग और तृष्णाको ज्यादा होनेसे रोकना यही है कि उन्हें कोई चीज़ न दे यदि बुझाना ही है तो सन्तोष, जल का प्रयोग करो। यदि तृष्णा पर तुम एकदम बढ़ गये तो फंस जाओगे। मक्खी असन्तोषी होकर बहते हुए गुड़को खाने जाती है, उसके बीचमें कूद पड़ती है और फंसकर वहीं प्राण दे देती है। मगर सन्तोषी चींटी उसी गुड़को धीरेसे जाकर एक तरफ बैठकर खाकर आनन्द लेती है। मनुष्य! तू जानवरोंसे भी कुछ सीख।

(क्रमशः)

मैं कौन हूँ

(लेखक—ब्रह्मनिष्ठ परमहंस स्वामीजी श्रीभोलेबाबाजी महाराज)

अरे भाई! मैं कौन हूँ, ऐसा प्रश्न क्यों करता है? जो कुछ है, तू ही तो है, तेरे सिवाय है ही क्या? तेरे सिवाय कुछ नहीं है, तूँ ही सब कुछ है! श्रुति कहती है कि–यह सब ब्रह्म है, तब तूँ मैं और सब ब्रह्म ही हुये! ब्रह्म ही सब है, जब ब्रह्म ही तेरा आत्मा है, तब सब तू ही है। तू ही मैं हूँ, मैं ही तू है, मैं तू और वह तीनों पर्याय हैं यानी एकही अर्थके बोधक हैं, विद्वानोंके लोकमें तीनों शब्दोंका अर्थ एकही है, मूढ़ पुरुषोंने अपने व्यवहारकी सिद्धिके लिये तीनोंके भेदकी कल्पना करली है, निश्चय तीनों एकही हैं, मैं अपने को मैं और तुझे तू कहता हूं, तू अपने को मैं और मुझे तू कहता है, तब शब्दोंका ही तो भेद हुआ, अर्थमें भेद नहीं है, अर्थ तो एकही है, इसलिये जो कुछ है तू ही है, तेरे सिवाय कुछ नहीं है. भेदबुद्धि त्यागदे। तूने सुना भी है कि–सत्का कभी अभाव नहीं होता और असत् का कभी भाव नहीं होता। जब तू अपने को मैं हूँ कह रहा है, तब तू है ही, जो है वह तूही है। मैं की उपाधि त्यागदे, कौन की उपाधि त्यागदे, उसके त्यागने पर 'हूँ' जो शेष रहा, वहही तू है, वहही तेरा वास्तविक स्वरूप है, वेदवेत्ता 'हूँ'को ही सामान्य सत्ता कहते हैं, 'हूँ' को ब्रह्म नामसे पुकारते हैं, 'हूँ' को ही श्रुति सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म कहती है, यह सत् ही सृष्टिके पूर्वमें था, ऐसा भी श्रुति कहती है इसीको कहीं श्रति सुखरूप भूमा कहती है, इसीको तत्त्वदर्शी ज्ञप्ति, उपलब्धि, अनुभव, ज्ञान अज्ञान आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं, ये सब ब्रह्मके नाम हैं, ब्रह्म तेरा आत्मा है, इसलिये सब तू ही है, तेरे सिवाय कुछ नहीं है।

इस तुच्छ देहमें अभिमान करनेसे तू महान् होकर भी छोटासा होगया है, अमर-अजर होकर भी मरने का जन्मने का और वृद्ध होनेका अनुभव करने लग गया है, यानी मैं देह हूँ, ऐसा माननेसे देहके जन्मसे तू अपना जन्म मानता है, देहके वृद्ध होनेसे अपने को वृद्ध समझता है, देहके मरनेसे अपने को मरा हुआ मानता है, जन्मना मरना आदि सब धर्म देहके हैं, इनमेंसे तेरा एक भी धर्म नहीं है, तू तो शुद्ध है, नित्य मुक्त है, न कहीं जाता है, न कहीं आता है, परिपूर्ण सर्वत्र ठसाठस भर रहा है, सुख स्वरूप है, दुःख का तुझमें लेश नहीं है, चिन्मात्र स्वरूप है, अज्ञानका तुझमें नामतक नहीं है, ज्योतियोंका ज्योति है, आनन्द का भी आनन्द है, सुखका भण्डार है, तेरे सुखकी छायासे सब संसार सुखी हो रहा है। तुझे इच्छाने दीन कर रक्खा है, सबकी इच्छा छोड़दे, धनकी, पुत्रकी, स्त्री की, ऐश्वर्यकी, इत्यादि किसी की भी चाह मतकर, फिर तुझे अनुभव होगा कि–तू सर्वत्र, सर्वदा, सर्वथा परिपूर्ण है, सबका अधिपति है, सबका आधार है, सबका अधिष्ठान है। यह समस्त प्रपंच तेरा आभास है, आभास होनेसे मिथ्या है, मिथ्या होनेसे है ही नहीं, तेरी सत्तासे ही यह सचासा प्रतीत हो रहा है, स्वयं इसकी सत्ता नहीं है। जैसे मरुभूमिमें मृग तृष्णाका जल भासमात्र ही है, वस्तुतः नहीं है, जैसे रज्जुमें कल्पा हुआ सर्प भासमात्र होनेसे नाममात्र का है, इसीप्रकार तुझमें दिखाई देनेवाला यह दृश्य मिथ्याही है। एक तू ही सचा है, तूही चेतन है, तूही सुख स्वरूप है, साक्षी, चेता, निर्गुण, एक अद्वितीय, आनन्दघन, कूटस्थ, स्वयं ज्योति, स्वयं सिद्ध इत्यादि सब तेरे ही नाम हैं।

विद्वानों का कथन है कि–सम्यक् दर्शन यानी जैसी वस्तु है वैसीही देखना महापुण्य है और इससे विपरीत यानी असम्यक् दर्शन यानी कुछ हो और कुछ देखना महापाप है। आत्मा नित्य है, शुद्ध है,

अजर है, अमर है, और देह अनित्य, अशुद्ध जर, और मर है, इस देहको आत्मा मानना अथवा समझना महापाप ही हुआ, महापाप करनेवाला सुखी नहीं हो सकता ! इस देहाभिमान रूप महापापने तुझे इस देहरूप पिंजरेमें बन्दकर दिया है, देह रूप पिंजरेमें बन्द होनेसे तू सर्वदा दुःखी और दीन रहता है, यदि तुझे सुखी और स्वतन्त्र होनेकी इच्छा है, तो देहाभिमान यानी देह मैं हूँ, ऐसा अभिमान त्यागदे, देह तू नहीं है, देह तेरा भी नहीं है, तू तो देहसे भिन्न देहका सत्ता देनेवाला है, जैसे चुम्बकके समीपतासे लोहा चेष्टा करता है इसीप्रकार तेरी सत्तासे देह इन्द्रिय आदि चेष्टा कर रहे हैं, इसलिये तू देह नहीं है क्योंकि तू निरवयव, असंग चेतन आत्मा है, देह अवयव वाला, अचेतन अनात्मा है, तेरा और देहका किसीप्रकार सम्बन्ध ही नहीं होसकता ! अज्ञानसे आत्मा अनात्माके स्वरूपको न जाननेसे तुझे देहसे अपना सम्बन्ध प्रतीत होता है, यह सम्बन्ध अविचारसे है, विचार करनेसे छूट जाता है अथवा पहिलेसे छूटा हुआ है, भाई ! विचारसे काम लो ! रात दिनको एकत्र मतकर ! कहीं जड़ चेतनका भी सम्बन्ध होता होगा। जैसे रात दिन एकत्र नहीं रह सकते, इसीप्रकार देहका और अदेह आत्माका सम्बन्ध नहीं होसकता। भाई इस अविचारने तुझे बहुत कालसे दुःखी कर रक्खा है, अब तो अविचारको विचारसे निवृत्त करके सुखी होजा।

भाई ! जैसा संग, वैसा रंग, इस न्यायके अनुसार संसारियों का संग करनेसे तू अपने को संसारी-कर्ता, भोक्ता, जन्मने वाला. मरनेवाला देह मानने लगा है, इसीसे दुःखी और दीन है, भोगासक्त संसारियों का संग त्यागदे, उनके ग्रन्थ पढ़ना छोड़दे, अधिक क्या उनसे भाषण करना तक छोड़दे, उनका दर्शन तक भी मतकर, विवेकी विरक्त महात्माओंका संग किया कर, उनकासा आचार किया कर, सत्शास्त्रों का श्रवण किया कर सत्शास्त्रोंमें बताये हुए आत्म तत्त्वका युक्तियोंसे मनन किया कर, उसीका प्रतिक्षण निदिध्यासन किया कर। ऐसा करनेसे तेरा मन निर्मल हो जायगा, बुद्धि सूक्ष्म और शुद्ध हो जायगी, तब तुझे सत्य असत्य का, आत्म अनात्म का सम्यक् बोध होजायगा बोधसे तू अपने स्वरूप को—तत्त्व को जान जायगा, तेरे संशय दूर हो जायेंगे, सब कामनायें निवृत्त हो जायेंगी, सब कर्म ज्ञानरूप अग्निमें भस्म हो जायेंगे, चिज्जड़ ग्रन्थियां सब खुल जायंगी और तू सर्वदाके लिये सुखी, स्वतन्त्र, शिवरूप ही होजायगा, फिर न कहीं जावेगा, न कहीं आवेगा, किन्तु सर्वत्र, सर्वदा पूर्णत्व का अनुभव करेगा। तेरे प्रश्नका संक्षेपसे उत्तर यह है कि-तू सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म है, देहादि नहीं है। साफ कहा है—

कुं०—जैसे द्रष्टा वृक्षका, होत वृक्षसे अन्य।
त्योंही द्रष्टा देह का, आत्म देहसे भिन्न॥
आत्म देहसे भिन्न, सर्वमय सबसे न्यारा !
शिव शाश्वत फिर एक, श्वेत नाहीं ना कारा॥
भोला ! दिन अरु रात, साथ ना रहते जैसे।
शिव आत्मा शव देह, नहीं मिलते हैं तैसे॥



अध्यात्म-भागवत संग्रह।



ज्ञान विज्ञानका सार (१) कर्म त्यागरूप संन्यास।

इस लोककी लीलाके समाप्त होनेके पूर्व ही उद्धवजीने भगवान् श्रीकृष्णसे निवेदन किया "हे केशव! मैं आपके चरण कमलोंका वियोग अधक्षण भी नहीं सह सकता, इसलिये मुझको भी अपने धाम ले चलिये" श्रीकृष्ण भगवान्ने एकान्त प्रियभक्त तथा सेवक उद्धवजीके प्रति प्रधानरूपसे सम्पूर्ण कर्मत्यागरूप संन्यास कह कर उसके बाद अन्यतत्त्वोंका साधारण रीतिसे निरूपण किया, जैसे श्रीमद्भगवद्गीतामें कुन्तीपुत्र अर्जुनके प्रति प्रधानरूपसे निष्काम कर्मोंका प्रतिपादन कर अनन्तर ज्ञानयोगके अनेक प्रकारके साधन बतलाये हैं।

उन्हीं ज्ञानयोगके साधनोंका अब पृथक् उपपादन करते हैं, श्रीभगवान्ने कहा (भा० ११ ७.६ इत्यादि)

(६) तुम स्वजन और बान्धवोंमें सम्पूर्ण स्नेहका त्याग करके मुझ परमेश्वरमें मन लगाकर सर्वत्र समदृष्टि रखकर पृथिवी पर विचरो।

(७) प्रश्न—इस संसारमें सब लोग गुण और दोषोंसे भरे हुए हैं—अतः उनमें समदृष्टि किस प्रकार हो सकती है ?

उत्तर—जो कुछ मन, वाणी, चक्षु और कर्म आदिसे ग्रहण किया जाता है, वह सब मनसे कल्पित होनेके कारण मायिक और नाशवान् है ऐसा जानो।

(८) विक्षिप्त चित्तवाले पुरुषको भेदविषयक भ्रम (मैं और मेरा अध्यास) होता है, उसीसे वह पुण्य, पाप, सुख* दुःखां आदिका भोक्ता होता है। गुण दोषोंकी बुद्धिवाले पुरुषके लिए वेदमें कर्म (विहित) अकर्म (कर्मलोप) और विकर्म (निषिद्ध) का विधान किया है, न कि—समदृष्टिवालेके लिये।

(९) इस कारण इन्द्रियोंके समूह और चित्तको वशमें करके तुम, इस जगत्का विस्तार अपनी आत्मा में देखो, और आत्माको मुझ ईश्वरमें देखो—अर्थात् मुझमें अपने स्वरूपको अभेद रूपसे देखो।

(१०) शंका—कर्म करने पर देवता विघ्न डालते हैं ?

समाधानः—ज्ञान (वेदान्तके तात्पर्यका निश्चय) और विज्ञान (तत्त्ववस्तुका अनुभव करना) इन दोनोंसे युक्त तथा आत्माके अनुभवसे सन्तुष्ट चित्तवाला पुरुष, देवादिका भी आत्मा होजाता है, इसलिये उसका कोई विघ्न (तिरस्कार) नहीं कर सकता है। श्रुति भी कहती है—(तस्य ह न देवाश्चनाभूत्या ईशते)।

(११) ज्ञानीका भी यथेष्ट आचरण नहीं होता है जैसे छोटा बालक संकल्प-विकल्पसे रहित होकर कोई कर्म करता है और कोई नहीं करता है, इसीप्रकार गुणदोषरहित ज्ञानी प्राचीन शुभ संस्कारके बलसे निषिद्ध कर्मोंसे निवृत्त होता है और प्रायः विहित-कर्म करता है, न कि इस विधिसे कि—इन कर्मोंसे कोई लाभ होगा।

(१२) इस प्रकार सब प्राणियोंका मित्र, ज्ञान, विज्ञानका निश्चय करनेवाला, शान्त, भक्त, सकलजगत् मेरा (ईश्वरका) स्वरूप है ऐसा देखनेसे फिर वह भवबन्धनको प्राप्त नहीं होता है। ([redacted])

(१) देखिए भागवत एकादश स्कन्ध अध्याय ७।६, ११।२१, १२।२४

* सांसारिक दुःख—सुखका अनुसन्धान न रखना सुख है भोग सुख नहीं है [११।१९।४१]

† भोग की इच्छा दुःख है अग्निदाहादि दुःख नहीं है [११।१९।४१]

(२) असंभावना विपरीत भावना रूप दोषोंके परिहार करनेके उपाय।

उद्धवने कहा कि–विषयोंमें आसक्त पुरुषोंसे विषयों का त्याग करना बड़ा कठिन है। मैं आपकी मायासे स्त्री पुत्रादि पदार्थोंमें मोहित हूँ, क्योंकि-देहमें मुझे "मैं और मेरा" ऐसा अभिमान है। अतः जो साधन आपने कहें हैं उनको मैं जिसप्रकार आसानीसे कर सकूं, वैसा मुझे उपदेश दीजिए।

इसप्रकार भगवान्से उपदिष्ट तत्त्वज्ञानको असम्भावना और विपरीत भावनारूप प्रतिबन्धसे नहीं समझने वाले, उद्धवके प्रति अज्ञानकी निवृत्तिके लिये गुरुके विशेष उपदेशके विना भी अपने आप विचार करके तत्त्व ज्ञानकी प्राप्ति होजाती है, यह दर्शानेके लिये श्री भगवान् बोले—(देखिये भा० ११।७।१९ इत्यादि)।

इस लोकमें जो लोग परमार्थ तत्त्वके परीक्षक हैं वे प्रायः गुरुके विशेष उपदेशके विना (स्वयं) विवेक बुद्धिसे ही अपना विषयवासनासे उद्धार करते हैं।।१९।।

पशु आदिके शरीरमें भी अपना हित और अहित चिन्तन करनेवाला आत्मा है। मनुष्यके शरीरमें तो विशेषरूपसे अपना हितचिन्तक (गुरु) आत्माही है, क्योंकि-पुरुष अधिकारी होनेसे प्रत्यक्ष और अनुमानसे परम पुरुषार्थीभूत आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।। २० ।।

अव ज्ञानका प्रत्यक्ष होना "पुरुषत्वे चाविस्तरात्मा सहि प्रज्ञानेन सम्पन्नतमो विज्ञातं पश्यति"। इत्यादि श्रुतिसे दिखलाते हैं। संख्या योगमें प्रवीण विवेकी पुरुष सम्पूर्ण शक्तियोंसे सुसम्पन्न मेरे स्वरूपको पुरुष शरीरमें विस्तारके साथ देखते हैं ।। २१ ।।

इसकारण पुरुष शरीरकी स्तुति करते हैं—मैंने एक, दो, तीन और चार पांव वाले बहुत पांव वाले तथा विना पांववाले बहुत शरीरोंकी सृष्टि की है, उनमें से मुझे मनुष्य शरीर अतिप्रिय लगता है ।। २२ ।। (देखिये भा० ११।२१।१२)।

अव अनुमानका प्रकार वतलाते हैं—जिसका इन्द्रियोंसे और अहङ्कारादिसे ग्रहण नहीं हो सकता, उसका अनुमानसे ग्रहण होता है—अर्थात् "बुद्धि आदि इन्द्रियोंका जो कोई प्रकाशक है वह ईश्वर है"। अनुमान इसप्रकार होता है कि-बुद्धि आदि जड़ हैं, और उनको प्रकाश करनेवाला स्वयं प्रकाश आत्माही हो सकता है। दूसरा अनुमान यह हो सकते हैं—बुद्धि आदि साधन हैं स्वतन्त्र कर्ता नहीं हो सकते हैं—जैसे कुल्हाड़ी स्वतन्त्र नहीं काट सकती।

(३) आत्माज्ञानके उपाय।

भगवान्ने कहा था कि-गुरुके विना भी असम्भावनादि दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है, उसीको स्पष्ट करनेके लिये उद्धवजीके प्रति अवधूत दत्तात्रेयके चौवीस गुरुओंके दृष्टान्तोंसे उपदेश करते हैं।

(भा० ११ अ० ७।८।९)

पृथ्वीसे क्षमा परोपकार और पराधीन रहना सीखे (यहां पराधीनतासे यह विवक्षित है कि सर्वथा परमात्माके अधीन रहे)।

प्राणवायुके समान प्राणधारणमात्र जीविकासे निर्वाह करे। किसीमें आसक्त न होना और अलिप्त रहना वायुसे सीखे।

आकाशसे यह सीखे कि-आत्मा अपरिच्छिन्न और व्यापक है। जैसे धूलि धूमादिकोंसे व्याप्त हुआ आकाश उनसे लिप्त नहीं होता है। इसीप्रकार यह भी समझना चाहिये कि अन्तर्यामी आत्माको पञ्चमहाभूत स्पर्श नहीं करते।

जलसे स्वच्छता, स्निग्धता, मधुरता मधुर भाषण और दूसरेको पवित्र करना सीखे।

अग्निसे तेजस्विता, मलरहित तथा पापरहित रहना और दूसरेके दिये हुए आहारसे तृप्त रहना सीखे। जैसे आकार रहित अग्नि काठके गुणोंसे लम्बी टेढ़ी आदि प्रतीत होती है वैसे ही किसी विशेष आकारका न होकर भी परमात्मा अपनी मायासे देव तिर्यगादि शरीरोंमें प्रविष्ट हुआ-सा प्रतीत होता है।

जैसे चन्द्रमा घटता और बढ़ता नहीं है किन्तु मनुष्योंको उसका जितना अंश दिखायी देता है वह उतना ही प्रतीत होता है वैसे ही आत्माके भी जन्मादि छः विकार नहीं हैं।

सूर्यसे निरभिमानपना और भेदभाव रहितपना सीखे। जैसे सूर्य घट आदि वर्तनों और उपाधियोंके भेद से नाना प्रकारका दिखायी देता है, वैसे ही अजन्मा आत्मा अद्वितीय होता हुआ भी देहादि उपाधिमें प्रविष्ट होकर अज्ञानसे नाना प्रतीत होता है।

कपोतसे यह सीखे कि किसीका अधिक लालन तथा किसीसे प्रीति और प्रसंग न करना चाहिये। अन्यथा कपोतके(१) समान दुःख प्राप्त होगा।

(क्रमश)

योगतत्त्व-मीमांसा

(लेखक—श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री जयेन्द्रपुरीजी महाराज मण्डलेश्वर)

[द्वितीय खण्ड—पूर्व प्रकाशित से आगे]

भक्तिकी द्वितीय भूमिका-महापुरुषोंकी दयापात्रता।

महापुरुष स्वभावसे ही दयालुत्व, परहिततत्परत्व आदि दिव्य गुणोंसे विभूषित होते हैं। उनकी कृपा प्राप्त करके ही मनुष्य कल्याण-पथमें अग्रसर होता है। अतएव महापुरुषोंकी दयापात्रता भक्तिकी द्वितीय-भूमिका है।

श्रीमद्भागवतके चतुर्थाध्यायमें दयापात्रताके विषय में एक कथा इसप्रकार है--

वर्हिषद् राजाके प्रचेतस नामके दश पुत्र थे। वे भगवत्प्राप्तिके लिये वनमें तप करनेको जा रहे थे। मार्गमें उनको नीलकण्ठ, त्र्यम्बक, तेजस्वी, महादेव भगवान् का दैवयोगसे दर्शन हुआ, दर्शनमात्रसे परम प्रसन्न हुए उन प्रचेतसोंके प्रति कृपासागर भगवान् महादेव प्रसन्न होकर बोले--

यूयं वेदिषदः पुत्रा विदितं वश्चिकीर्षितम्।
अनुग्रहाय, भद्रं व एवं मे दर्शनं कृतम्॥
यः परं रंहसः साक्षात्, त्रिगुणाज्जीवसंज्ञितात्।
भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियो हि मे॥
अथ भागवता यूयं प्रियाः स्थ भगवान्यथा।
न मे भागवतानाञ्च,प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित्॥
इदं विविक्तं जप्तव्यं, पवित्रं मङ्गलं परम्।
निःश्रेयसकरं चापि श्रूयतां तद्वदामि वः॥
इत्यनुक्रोशहृदयो भगवानाह ताञ्छिवः।
बद्धाञ्जलीन्राजपुत्रान्नारायणपरो वचः॥
(भा० ४।२४।२८-३३)

हे प्राचीन वर्हिके पुत्रों! आप जिस कार्यको करना चाहते हैं, उस कार्यको मैंने जान लिया है। आपके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही मैंने आपको दर्शन दिया है। जो भगवान् त्रिगुणात्मक-जीव विशिष्ट-द्वैत प्रपञ्चसे अतीत हैं, उन वासुदेव भगवान् के आप लोग

(१) किसी जङ्गलमें एक वृक्षपर घोंसला बनाकर एक कपोत और कपोतिनी अपने छोटे छोटे बच्चोंके साथ सुख पूर्वक रहते थे। एक दिन उन दोनोंको चारा चुंगनेके लिए बाहर जानेपर किसी बहेलियाने उनके बच्चोंको पकड़ लिया। कबूतरोंने लौटकर यह करुण दृश्य देखा। बच्चोंकी लालन पालनरूपी प्रीतिसे पहले कपोतिनी तदनन्तर कपोत भी मोहके वशमें होकर उस जालमें फंसगया-जिसमें बच्चे फंसे थे, और नाशको प्राप्त हुये। इसीप्रकार कुटुम्बके ऊपर आसक्तिकरने वाला गृहस्थ दुःखमें फंसकर विनाशको प्राप्त होता है।

परम प्रिय भक्त हैं, जैसे मुझे भगवान् प्रिय हैं, तैसे भगवान् के भक्त भी प्रिय हैं, भक्तोंको छोड़कर कदाचित अन्य कोई भी मुझे प्रिय नहीं है। यह मैं आप लोगोंको परम पवित्र, परम मँगलमय, कल्याण-कारक, मनन करने योग्य, रुद्रगीत का उपदेश करता हूँ, उसे सावधान मनसे सुनिये। इसप्रकार महादयावान् भगवान् शिवने हाथ जोड़े हुए उन राजपुत्रोंके प्रति अकारण दयालुतासे प्रेरित होकर परमार्थ साधनका उपदेश दिया।

इसीप्रकार श्रीद्भागवतके चतुर्थस्कन्धमें भगवद्दर्शन की उत्कण्ठा वाले ध्रुवजीके प्रति महापुरुष देवर्षि नारदजीने अकारण दयासे भगवत्प्राप्तिके सभी साधनों का उपदेश दिया था।

पुण्यवान् योग्य अधिकारीको स्वप्रयत्नके विनाही सत्पुरुषों का समागम प्राप्त हो जाता है। जब मनुष्य योग्य हो जाता है तब उसे अपनी योग्यताके अनुसार गन्तव्य मार्ग मिल ही जाता है इसलिये अपनी योग्यता प्राप्तिके लिये महान् प्रयत्न करना चाहिये। महापुरुष अकारण दयाशील होते हैं, अधिकारीके ऊपर दया करके उसे परमार्थ पथका पथिक बनाही देते हैं, महापुरुषोंके उपदेशके अनुसार बर्ताव करने से महापुरुष प्रसन्न हो जाते हैं, उनकी प्रसन्नता से ही मनुष्य उनकी दयाका पात्र बनता है, जिससे भगवद्भक्ति सुलभ हो जाती है। आचार्य भगवत्पादने कहा है—

दुर्लभं त्रयमेवैतत् देवानुग्रह हेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष संश्रयः॥

संसारमें तीन पदार्थ दुर्लभ हैं, जो देवताओंकी कृपासे प्राप्त हो सकते हैं, एक मनुष्यपना, द्वितीय मुमुक्षुपना एवं तीसरी महापुरुषोंकी कृपापात्रता।

भक्तिकी तृतीय भूमिका भागवत धर्ममें श्रद्धा।

'भगवत्प्राप्तिके साधनरूप भागवत धर्मोंके अनुष्ठानसे मैं कृतार्थ हो जाऊँगा' इसप्रकार विश्वासपूर्ण निश्चयका नाम श्रद्धा है, श्रद्धासे ही भागवत धर्मका श्रवणादि व अनुष्ठान होता है। श्रीमद्भागवत में कहा है—

शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः।
(भा० १।२।१६)

भागवत धर्मोंके श्रवण करनेकी इच्छा वाले श्रद्धालु मनुष्यको भगवत्कथाके श्रवणमें परम रुचि उत्पन्न होती है।

यज्ञ दानादि समस्त धर्म कार्योंमें श्रद्धाका प्रधान स्थान है. श्रद्धा शून्य मनुष्य सत्कर्ममें प्रवृत्त नहीं हो सकता। आचार्य शंकर भगवत्पादने कहा है—

श्रद्धाविहीनस्य तु न प्रवृत्तिः, प्रवृत्तिशून्यस्य न साध्यसिद्धिः।
अश्रद्धयैवापहताश्च सर्वे मज्जन्ति संसार महासमुद्रे॥
(सर्व वेदान्तसिद्धान्तसार २१२)

श्रद्धा रहित मनुष्यकी सत्कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती है और सत्कर्ममें प्रवृत्ति रहित मनुष्यको लौकिक एवं पारमार्थिक फलकी सिद्धि नहीं होती। अश्रद्धासे ही तिरस्कृत हुये सब लोग संसाररूप महा समुद्रमें डूब जाते हैं, अर्थात् श्रद्धा ही जन्म मरणादिरूप संसार दुःखका नाशक एवं भगवत्प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन है। श्रद्धा ही फल सिद्धिमें कारण है, आचार्य श्रीने कहा है—

देवेच वेदेच गुरौ च मन्त्रे तीर्थे महात्मन्यपि भैषजे च।
श्रद्धाभवत्यस्य यथायथान्तस्तथा तथासिद्धि रुदेति पुंसाम्॥
(सर्व० वे० सा० सं० २१)

देवता, वेद मन्त्र, तीर्थ, महात्मा, और औषधिमें जिसकी जैसी जैसी श्रद्धा होती है, उसको श्रद्धाके अनुसार फलसिद्धि प्राप्त होती है।

मन्त्रोच्चारण तथा स्तोत्र पाठादि अशुद्ध करने पर भी तथा चित्तकी एकाग्रता न होनेपर भी श्रद्धा वाले मनुष्यको उस मन्त्र जपादिसे फलकी प्राप्ति अवश्य होती है। अशुद्धि आदि त्रुटिको श्रद्धा पूर्ण कर देती है. शुद्ध उच्चारण एवं मनकी एकाग्रता होनेपर

भी श्रद्धारहित मनुष्यको वह सत्कर्म यथेष्ट फल साधक नहीं हो सकता। अतएव महाभारतके शान्तिपर्वमें कहा है—

वाग्वृद्धं त्रायतेश्रद्धा मनोवृद्धं च भारत।
श्रद्धावृद्धं वाङ्मनसी न कर्म त्रातुमर्हति॥
(२६४-९)

इस श्लोकमें वृद्ध शब्दका अपूर्ण एवं त्रुटि अर्थ है, अर्थात् वाग्वृद्ध यानी अशुद्ध उच्चारणवाले मनुष्यकी तथा मनोवृद्ध यानी एकाग्रतादि सद्गुणोंकी त्रुटिवाले मनुष्यकी श्रद्धा रक्षा करती है, परन्तु जिसका उच्चारण शुद्ध है तथा चित्तकी एकाग्रता भी है तथापि श्रद्धा न होनेके कारण वह सत्कर्म उसकी रक्षा नहीं कर सकता। इसलिये श्रद्धाकी सभी शास्त्रोंमें विशिष्ट महिमा मुक्त कण्ठसे गायी गई है—

श्रद्धैव सर्वधर्मस्य चातीव हितकारिणी।
श्रद्धयैव नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः॥
श्रद्धया पठितो मन्त्रस्त्ववद्धोऽपि फलप्रदः।
श्रद्धया पूजितो देवो नीचस्यापि फलप्रदः॥
(स्क० पु० ख० ३ ब्र० ख० ३ अ० १७-३, ५)

श्रद्धाही सर्वधर्मकी सिद्धिमें अतीव हितकारी है, इस लोकमें तथा परलोकमें श्रद्धासे ही मनुष्यको सिद्धि प्राप्त होती है, श्रद्धासे अशुद्ध पढ़ा गया मन्त्रभी फल देनेवाला होता है। श्रद्धापूर्वक पूजा गया देव नीच मनुष्यको भी फलप्रद होता है।

श्रद्धासे नीच मनुष्य भी उत्तम फलको प्राप्त होता है, इस विषयमें स्कन्द पुराणके तृतीय खण्डमें एक उदाहरण है—पञ्चाल राजाका सिंहकेतु नामक एक राजकुमार था, वह सर्वगुणसम्पन्न एवं क्षत्रिय धर्मपरायण था। एकसमय वह चंडक नामवाले एक भीलके साथ शिकारके लिये वनमें गया। वनमें उस भीलने एक पुराना शिवालय देखा, शिवालयमें उसे एक छोटासा शिवलिंग मिला। उस शिवलिंगको लेकर राजकुमारके पास आकर कहने लगा—हे राजन्! आप इस शिवलिंगको देखिये, कैसा सुन्दर एवं मनोहर है। यह मुझे समीपके शिवालयसे मिला है, मैंने निश्चय किया है कि—इस शिवलिंगका श्रद्धाभक्ति पूर्वक नित्यप्रति पूजन करूँगा, और इसके पूजन द्वारा करुणावतार जगदन्तर्यामी स्वात्माराम भगवान् विश्वनाथको प्रसन्न करूँगा, अतएव इसके पूजनकी विधि कृपया मुझे बताइये। राजपुत्रने इसको विद्यादि गुणोंसे तथा कुलीनत्वादि गुणोंसे रहित देखकर उदासीन भावसे कहा—इस शिवलिंगका पूजन करनेके लिये शुद्ध आसनके ऊपर बैठकर जलका अभिषेक करना। तथा गन्ध, अक्षत, पत्र, पुष्प धूप, दीप, तथा चिताभस्म आदि द्रव्योंसे पूजन करना। घरमें बना हुआ खाद्यान्नका नैवेद्य लगाना, पूजाके अन्तमें प्रसाद ग्रहण करना। 'नमः शिवाय' इस पंचाक्षरी मन्त्रका निरन्तर जप करते रहना। चिताभस्मके लेपनसे भगवान् शंकर अतीव प्रसन्न होते हैं। नियमसे चिताभस्मसे पूजन करना। यद्यपि राजकुमारने यह पूजा विधि हास्यके भावसे कही थी। परन्तु चंडक भीलने उसके वचनपर विश्वास किया, श्रद्धा एवं प्रेमके साथ उस भीलने घर आकर पूजा प्रारम्भ कर दी। कुछ समय तक इसप्रकार पूजा करता रहा। एकसमय चिताभस्म खतम होगई, तब, चिताभस्मके लिये इधर उधर बहुत खोज किया, परन्तु चिताभस्म कहीं भी नहीं मिली, वह अपने घरमें आकर अपनी स्त्री भीलनीसे कहने लगा—आज मुझे किसी भी स्थान से चिताभस्म नहीं मिली, मैंने बहुतही खोज की। चिताभस्म बिना आज शिवपूजा भंग हो जायगी। पूजाके बिना मैं प्राण धारण करना भाररूप समझता हूँ, पूजनका भंग होनेपर मैं जीनेकी भी इच्छा नहीं करता। इसप्रकार अपने पतिको व्याकुल देखकर वह पतिप्राणासाध्वी भीलनी अपने पतिसे कहने लगी, हे पतिदेव! आप घबड़ाइये नहीं, चिताभस्मके लिये मैं एक उपाय बतलाती हूँ, इस अपने पुराने घरमें आग

लगाकर उसमें प्रवेशकर मैं दग्ध होजाऊँ, इससे आपको चिताभस्म मिलेगी। जब भीलने अपनी पत्निके इस भीषण कार्यको नहीं स्वीकार किया, तब विवेकवती भीलनी भीलसे इसप्रकार कहने लगी—

एतावदेव साफल्यं जीवितस्य च जन्मनः।
परार्थे यस्त्यजेत्प्राणाञ्छिवार्थे किमुत स्वयम्॥
(स्क० पु० ख० ३ ब्र० ख० ३ अ० १७-३७)

मनुष्य जन्मकी एवं मनुष्य जीवनकी यही सफलता है, जो अन्यके हितके लिये प्राणका परित्याग किया जाय, उसमें भी साक्षात् कल्याणस्वरूप शिव परमात्माके लिये शरीरके त्याग करनेमें सफलताका क्या कहना!

महादेव विश्वनाथके लिये शरीरका त्याग करनेमें आपको तथा मेरे माता पिताको बहुत पुण्य होगा। इसलिये आप मुझे इस शरीरका चिताभस्म बनानेके लिये अनुमति दीजिये। पश्चात् पतिकी आज्ञा ग्रहण कर स्नानादिसे शुद्धहोकर वस्त्रालंकारादिसे भूषित होकर अपने मकानमें आग लगाई श्रद्धाभक्तिपूर्वक अग्निदेवताकी प्रदक्षिणा तथा नमस्कारादि कर भगवान् शंकरका मनमें ध्यान करके हाथ जोड़कर भीलनी इसप्रकार बोलने लगी—

पुष्पाणि सन्तु तव देव! ममेन्द्रियाणि
धूपोऽगुरुर्वपुरिदं हृदयं प्रदीपः।
प्राणा हवींषि करणानि तवाक्षताश्च
पूजाफलं व्रजतु साम्प्रतमेष जीवः॥
वाञ्छामि नाहमपि सर्वधनाधिपत्यं
न स्वर्गभूमिमचलां न पदं विधातुः।
भूयोभवामि यदि जन्मनि जन्मनिस्यां
त्वत्पादपंकजलसन्मकरन्दभृंगी॥
जन्मानि सन्तु ममदेव शताधिकानि
माया न मे विशतु चित्तमबोधहेतुः।
किञ्चित्क्षणार्धमपि ते चरणारविन्दात्
नापैतुमे हृदयमीश नमो नमस्ते॥
(स्क० पु० ख० ३ ब्र० ख० अ० १७-४३, ४४, ४५)

हे देव! यह मेरी चक्षुरादि ज्ञानेन्द्रियां आपकी पूजाके लिये पुष्परूप हों, और यह शरीर धूपके लिये अगरुरूप (धूपका काष्ठविशेष) हो, यह मेरा, हृदय दीपके समान हो, ये मेरे प्राण हविपरूप हों, तथा पादादि कर्मेन्द्रियां अक्षतरूप हों, यह समस्त कार्य करणरूप देह आपकी पूजाके लिये समर्पण करती हूँ, और इस पूजाका फल यह जीव प्राप्त करे।

हे प्रभो! मैं बड़ी भारी धनाढ्या होनेकी भी इच्छा नहीं करती हूँ। स्वर्ग, अचल पृथ्वी तथा ब्रह्मलोकके ऐश्वर्यको भी नहीं चाहती हूँ, यदि दैवयोग से मेरा जन्म होने वाला होय तो मैं प्रत्येक जन्ममें आपके चरण कमलोंसे निकलने वाले भक्ति रसका पान करने वाली भ्रमरी होती रहूँ। हे महेश्वर! हे देव! आपको वारम्वार नमस्कार है, मेरा सौसे भी अधिक जन्म होय तथापि मेरे चित्तमें भ्रान्तिका मूल कारण मायाका प्रवेश नहीं होना चाहिये और मेरा हृदय आधी क्षणके लिये भी आपके चरण कमलसे कदापि अलग न हो, यही आपसे इस दासीकी विनम्र प्रार्थना है।

इसप्रकार प्रार्थना करके भगवान् शंकरकी प्रसन्नता के लिये भीलनीने अग्निमें प्रवेश किया, अल्प समयमें ही वह जल कर भस्म होगई। भीलने उस चिताभस्म को लेकर भगवान् शंकरकी विधिपूर्वक पूजा किया पूजा समाप्तिके बाद नित्यप्रति के नियमानुसार नैवेद्य के लिये अपनी पत्नीको याद किया, याद करते ही उसने अपनी पत्नीको पीछे खड़ी हुई देखा। और अपना जला हुआ घर भी प्रथमके तरह जैसा का तैसा देखा। भीलको बड़ा विस्मय हुआ, और अपनी पत्नीसे कहने लगा। यह घर भी तथा तू भी अग्निसे भस्म हो गई थी अब तूँ कहांसे आ गई? और यह घर भी जैसाका तैसा कैसे बना रहा? यह भगवान् शंकरकी लीला मेरे समझमें नहीं आ रही है। पत्नीने भी आश्चर्यके साथ कहा, जलती हुई आगमें

बैठनेके बाद मुझे कुछ भी मालूम नहीं हुआ, आगका ताप मुझे थोड़ा भी मालूम नहीं हुआ, ऐसा मालूम होता था कि-मैं जलमें बैठी हुई हूँ, जैसे सो करके जाग जाते हैं, उसीप्रकार यह सब एक ही क्षणमें हो गया। अब तो मैं अपने घरको नहीं जला देख रही हूं, आपकी पूजाके बाद मैं शिवजीका प्रसाद लेनेको आई हूँ, इसप्रकार इन पति पत्नीके बातचीतके समयमें ही आकाशमार्गसे विमान द्वारा शिवगण आ पहुँचे, इनके दर्शन मात्रसे भील एवं भीलनीके शरीर दिव्य हो गये और इन दूतोंके साथ विमानमें बैठकर भगवान् शंकरके अमरधाम कैलासमें पहुँच गये।

इसलिये कहा है—

तस्माच्छ्रद्धैव सर्वेषु विधेया पुण्यकर्मसु।
नीचोऽपि शबरः प्राप श्रद्धया योगिनांगतिम्॥ ६०

यह भील नीच जातिका तथा शास्त्रज्ञान शून्य था, वह आचारसे रहित था, पूजाक्रम भी नहीं जानता था, परन्तु केवल श्रद्धासे ही उसका कल्याण हुआ। इसलिये सभी पुण्यकर्मोंमें श्रद्धा करनी ही चाहिये, नीचजातिका भील भी श्रद्धासे योगियोंकी गतिको प्राप्त होगया। और भी—

श्रद्धापूर्वाः सर्वधर्मा मनोरथफलप्रदाः।
श्रद्धया साध्यते सर्वं श्रद्धया तुष्यते हरिः॥
(वृ० ना० पु० पू० अ० ४-२)

श्रद्धासहित आचरण किये हुए सर्व धर्म इच्छित फलोंको देते हैं, श्रद्धासे ही सभी कार्य सिद्ध होते हैं, श्रद्धासे ही परमात्मा प्रसन्न होता है।

वेदमें और गीतामें भी ज्ञान प्राप्तिके लिये खास श्रद्धाकी ही आवश्यकता बतायी है।

'श्रद्धया सत्यमाप्यते' (शु० य० वे० सं०, अ० १९-३०)

श्रद्धासेही सत्य, ज्ञान अनन्त स्वरूप परमात्माकी प्राप्ति होती है।

श्रद्धावांल्लभतेज्ञानम्' (भ-गी-अ-४-३९)

श्रद्धालु पुरुषकोही ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

धर्मादिकोंमें श्रद्धा न होने का कारण पाप है, ऐसा शास्त्रोंका कथन है।

अश्रद्धा परमं पापं, श्रद्धा पापप्रमोचनी।
जहाति पापं श्रद्धावान्सर्पो जीर्णमिवत्वचम्॥
(म० भा० शा० प० अ० २६४-१०)

अश्रद्धा महान् पाप है, श्रद्धा पापोंसे मुक्त करने वाली है, जिसप्रकार सर्प पुरानी त्वचाको उतारकर फेंक देता है, उसीप्रकार श्रद्धालु मनुष्य पापोंका परित्याग करता है।

अश्रद्धासे दी हुई हवि को देवतालोग स्वीकार नहीं करते हैं, ऐसा धर्मशास्त्रोंका कथन है—

अश्रद्धा परमः पाप्मा श्रद्धा हि परमं तपः।
तस्मादश्रद्धया दत्तं हविर्नाश्नन्ति देवताः॥
(बो० स्मृ० प्र० १ अ० ५-७५)

अश्रद्धा बड़ा पाप है, श्रद्धा महान् तप है, अतः विना श्रद्धाके दी हुई हवि देवतागण सेवन नहीं करते।

मनुस्मृतिमें तथा महाभारतके शान्तिपर्वमें श्रद्धाके विषयमें ब्रह्माजीसे कही हुई एक गाथा है—

श्रोत्रियस्य कदर्यस्य, वदान्यस्य च वार्धुषेः।
मीमांसित्वाभयं देवाः, सममन्नमकल्पयन्॥
तान्प्रजापतिराहैत्य, मा कृध्वं विषमं समम्।
श्रद्धापूतं वदान्यस्य, हतमश्रद्धयेतरत्॥
(म० स्मृ० ४-२२४, २२५)
(म० भा० शा० प० अ० २६४-११, १२-३)

एक मनुष्य वेद पढ़ा हुआ है परन्तु वह कृपण है, और दूसरा सूदसे जीविका चलाने वाला होनेपर भी दानशील है-इन दोनोंके अन्नके सम्बन्धमें विचारकर दोनोंके अन्नको देवताओंने समानही भयप्रद मान-लिया था। अतएव उन देवताओंके पास जाकर

ब्रह्माजीने कहा—इन दो अन्नोंमें भेद है, और विषम होनेपर भी आपने दोनोंको समान समझा, यह अनुचित है। दोनोंको समान न समझो। क्योंकि दानशील (वदान्य) वार्धुषि (सूदसे जीविका करनेवाले) का अन्न श्रद्धाके कारण पवित्र है, परन्तु श्रोत्रियका अन्न, उसके कृपण होनेसे अश्रद्धासे दूषित है, अर्थात् अधम है। इसलिये दोनोंका अन्न समान नहीं है।

श्रद्धाके विषयमें श्रुति भी प्रमाण है—

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय।
इहेहैषांकृणुत भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः॥

कृ०य०वे०तै०सं०का १प्र०८,अनु०२१॥

हे प्रिय (अङ्ग) इन्द्रादि देवो! यज्ञ करनेवाले जो यजमान यज्ञके (बर्हिषः) नमस्कारका (वृक्ति) विनाश (न जग्मुः) न करते हों अर्थात् यज्ञविषयक श्रद्धाका परित्याग न करते हों, उनके ही हवि सम्बन्धी भोजनको आपलोग स्वीकार (कृणुत) करें। जैसे संसारमें किसान जौ, गेहूँ आदि (कुविद्) अन्नों को 'यह पका है' 'यह पका नहीं है' इसप्रकार क्रमसे परीक्षा करके (वियूय) पके हुए नाजको काट लेते हैं (दान्ति) और कच्चेको रहने देते हैं, उसीप्रकार आपलोग भी 'यह यजमान श्रद्धाहीन नास्तिक है, यह श्रद्धालु आस्तिक है' विवेकसे ऐसा निश्चय करके हविका भोजन करो।

योवै श्रद्धामनारभ्य यज्ञेन यजते नास्येष्टाय श्रद्दधते इति।

(कृ० य० वे० तै० सं० का० १, प्र० ६ अनु० ८)

देवता विषयक श्रद्धा न रखकर जो यजमान यज्ञ करता है, उस यज्ञके देवतागण और ऋत्विक् आदि भी उसके इष्टफलके सम्बन्धमें विश्वास नहीं करते हैं, तात्पर्य यह है कि—वे उस यज्ञको व्यर्थ समझते हैं।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

(भ० गी० १७-२८)

श्रद्धाके विना किया हुआ हवन, दान, तप और नमस्कारादि कार्य असत् कहा जाता है, वह परलोकमें कोई फल नहीं देता है तथा इस लोकमें भी श्रद्धारहित यज्ञादि सत्पुरुषों द्वारा निंदित होनेसे कीर्ति आदि फल भी नहीं मिलता है, अतएव सकाम कर्मोंका त्याग करके अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये सात्विक श्रद्धासे ही यज्ञादि करने चाहिये।

श्रद्धालु मनुष्यके सात्विक यज्ञमें प्रमादसे कोई त्रुटि होजाय तो परमात्माका प्रधान नाम 'ॐ तत् सत्' इन तीनों शब्दोंके उच्चारणसे प्रमादका प्रायश्चित्त हो जाता है। और यज्ञका पूर्णफल मिलता है। परन्तु श्रद्धाविहीन मनुष्यके यज्ञादिमें इन तीनों शब्दोंके उच्चारण करनेपर भी वे असत् ही कहे जाते हैं, क्योंकि यहां कर्तामें श्रद्धादि सद्भावना नहीं है अतएव विशिष्टफल भी नहीं मिल सकता है।

तैत्तिरीयोपनिषत्में भी श्रद्धारहित दानका निषेध किया है—

श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयाऽदेयम्।

(तै० उ० व० १, अनु० ११-३)

श्रद्धासे ही दान देना चाहिये अश्रद्धासे कभी भी दान न देना चाहिये।

इसप्रकार श्रद्धाका प्रभाव एवं उसकी आवश्यकता सर्वत्र प्रसिद्ध है।

जिन-भागवत-धर्मोंमें श्रद्धा कीजाती है, वे धर्म, श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें इसप्रकार कहे हैं—

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत, जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥ २१॥
तत्रभागवतान् धर्मान्छिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः।
अमायया अनुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः॥ २२॥

इसलिये अपने उत्तम श्रेयकी प्राप्तिके लिये जिज्ञासु शाब्दब्रह्म (वेद) के पारंगत श्रोत्रिय) और ब्रह्म चिन्तनके द्वारा शान्तचित्त (ब्रह्मनिष्ठ) गुरुकी शरण

लें। उन आत्मा और इष्टदेवरूप गुरुदेवसे ही भागवत धर्मोंको सीखें, जिनका निष्कपट आचरण करनेसे स्वयं अपनेको दे डालनेवाले श्रीहरि प्रसन्न होते हैं।

सर्वतो मनसोऽसंगमादौ संगं च साधुषु।
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम्॥ २३॥
शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः॥ २४॥
सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम्।
विविक्तचीरवसनं सन्तोषं येन केनचित्॥ २५॥
श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि।
मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि॥ २६॥
श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः।
जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम्॥ २७॥
इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम्।
दारान् सुतान्गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम्॥ २८॥
एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम्।
परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु॥ २९॥
परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः।
मिथोरतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः॥ ३०॥

संसारके सभी पदार्थोंमें मनकी असंगता, (अनाशक्ति) साधुजनोंका संग, समस्त प्राणियोंके प्रति यथोचित दया, मैत्री, नम्रता, शौच, तप, तितिक्षा (सहनशीलता), मौन (व्यर्थ बातका वर्जन), स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, निर्द्वन्द्वता, आत्मस्वरूप हरिको सर्वत्र देखना, एकान्त सेवन, अनिकेतता (गृह आदिमें ममत्व न रखना), पवित्र वस्त्रधारण करना, जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तोष मानना, भक्ति शास्त्रोंमें श्रद्धा रखना, अन्य शास्त्रोंकी निन्दा न करना, मनवाणी और कर्मका संयम, सत्यभाषण, शमदमादि, विचित्र लीलाविहारी भगवान्‌के दिव्य जन्म कर्म और गुणोंका श्रवण कीर्तन और ध्यान, उन्हींके लिये समस्त चेष्टाएं करना, यज्ञ दान तप जप अथवा और जो कुछ भी अपनेको प्रिय हो तथा स्त्री पुत्र गृह प्राण अथवा और जो कुछ हो। सब परमात्माको अर्पण कर देना—क्रमशः इन सब बातोंको पहिले गुरुदेवसे सीखे ! इसीप्रकार कृष्ण ही जिनके आत्मा और स्वामी है उन पुरुषोंसे प्रेम करना। स्थावर जंगम दोनों प्रकार के जगत् तथा महात्मा और साधुओंकी सेवा करना, भगवान्‌के परमपावन गुणोंका परस्पर कथोपकथन करना तथा जिससे आपसमें प्रेम, सन्तोष और शान्ति का विस्तार हो उन सभी कर्मोंको सीखे।

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम्।
भक्त्या संजातया भक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम्॥ ३१॥
क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचि-
द्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः।
गायन्ति नृत्यन्त्यनुशीलयन्त्यजं
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः॥ ३२॥
इति भागवतान्धर्मान्शिक्षन्भक्त्या तदुत्थया।
नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम्॥ ३३॥

फिर पापपुञ्जहारी भगवान् हरिका स्वयं स्मरण करे और औरोंसे करावे, इसप्रकार वैधी (साधनरूप) भक्तिसे प्रेम (फलरूपा) भक्तिका उदय होनेपर शरीर आनन्दसे पुलकित हो जाता है। ऐसा होनेपर वह बड़भागी भगवान् अच्युतका ध्यान करके कभी रोता, कभी हंसता, कभी आनन्दित होता और कभी नाचता कभी गाता और कभी उन अजन्मा प्रभुकी लीलाओंका अनुकरण करता हुआ परम उपराम होकर मौन हो जाता है। इसप्रकार भागवत धर्मोंका अभ्यास करते करते उन धर्मोंसे उत्पन्न हुई प्रेमाभक्तिके द्वारा नारायण परायण होनेपर पुरुष अनायास इस दुस्तर मायाको पार कर लेता है।

ग्राहकोंको-सूचना

मनीआर्डर तथा वी० पी० के रुपैये भेजनेका पूरा पता—

स्वा० बालानन्दजी विश्वनाथ व्यवस्थापक

अपारनाथ मठ, ढुण्ढिराज गणेश

(काशी) बनारस सिटी

इस पूरे-पतेसे ही ग्राहक-अनुग्राहकोंको वार्षिक चन्देके रुपैये भेजने चाहिये—

विश्वनाथके उद्देश्य और नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य एवं धर्म सम्बन्धी विषयों द्वारा जनता जनार्दनकी सेवा करना, और उपरोक्त विषयों पर पुनः पुनः विवेचन करना इसका मुख्य उद्देश्य है ।

नियम

(१) यह पत्र प्रत्येक मासकी शिवरात्रि (कृष्ण चतुर्दशी) को प्रकाशित होता है । विश्वनाथका वर्ष फाल्गुनकी महाशिवरात्रिसे आरम्भ होकर माघमें समाप्त होता है ।

(२) इस पत्रके हिन्दी विभागका डाकव्ययके सहित वार्षिक मूल्य २) रु० और गुजराती विभागका २॥) रु० मात्र भारतवर्षके लिये है, वार्षिक मूल्य अग्रिम लिया जायगा। लायब्रेरी, छात्र एवं धार्मिक संस्थाओंको केवल १॥) में दिया जायगा। एक वर्षसे कमके ग्राहक नहीं बनाये जाते ।

(३) कार्यालयसे विश्वनाथपत्र २-३ वार जांच करके भेजा जाता है। परन्तु किसी कारणवश किसी मासका **विश्वनाथ** ठीक समयपर न पहुँचे तो ग्राहकोंको अपने २ डांकघरसे ही प्रथम पूछताछ करनी चाहिये । डाकघरसे मिला हुआ उत्तर उसी महिनेकी पूर्णमासीके भीतर कार्यालयमें आजाना चाहिये। जिससे ग्राहकोंकी सेवामें न पहुँचा हुआ अंक भेज सकें ।

(४) इस पत्रमें किसी प्रकारके विज्ञापन किसी भी दरपर स्वीकार न किए जाँयगे ।

(५) जो महानुभाव कमसे-कम एकबार १२५) रु०से इस पत्रकी सहायता करेंगे, वे महानुभाव स्थायी संरक्षक माने जायेंगे। और जो महानुभाव कमसे-कम २५) रु० सहायता देंगे वे इस पत्रके संरक्षक माने जायेंगे । तथा जो भगवद्भक्त कमसे-कम ५) सहायता देंगे, वे भी इस धार्मिक पत्रके सहायक माने जायेंगे। और वर्षमें एक दफे पत्रमें संरक्षक-सहायकोंकी नामावली प्रगटकी जायगी ।

(६) थोड़े समयके लिये पता बदलवाना होतो अपने पोस्ट मास्टरको ही लिखना चाहिये । अधिक समयके लिये पता बदलनेकी सूचना हिन्दी महीनकी पूर्णमासी तक कार्यालयमें आजानी चाहिये ।

(७) ग्राहकोंको अपना नाम पता साफ साफ लिखते हुए ग्राहक नम्बर पत्र-व्यवहार करते समय अवश्य लिखना चाहिये, और पत्रोत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना जरूरी है।

(८) मनीआर्डर भेजते समय मनीआर्डरके कूपन पर रुपयोंकी तादाद, भेजनेका मतलब, पूरा नाम मय पता, ग्राहक नम्बर आदि सब बातें साफ साफ लिखनी चाहिये । प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **'व्यवस्थापक-विश्वनाथ पत्र'** के नामसे तथा लेख परिवर्तनके पत्र और सम्पादक सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **'सम्पादक-विश्वनाथ पत्र' विश्वनाथ-पत्र कार्यालय ढुण्ढिराज गणेश बनारस सिटी** के नामसे भेजने चाहिये ।

(९) विश्वनाथमें छपनेवाले लेख लेखकोंकी ही जिम्मेवारी पर छपेंगे ।

Regd. No. A. 2865

ज्ञान गुदड़ी।

हरिगीत छन्द ।

(१)

जीना रहेगा जब तलक, सीना न तब तक जायगा।
जीना गया, सीना गया. सीने नहीं फिर आयगा॥
मत आजकल कर, क्या खबर, कल आय या ना आयगा
जो होय करना कर अभी, पीछे नहीं पछतायगा॥

(२)

सूई नहीं धागा नहीं, कैसे सिया फिर जायगा
इस बातकी चिन्ता न कर, विश्वेश सब दिलवायगा॥
सीखा न मैं सीना कभी, अब भी न सीखा जायगा
मत सोच, सूत्रात्मा सभी, सिख जायगा सिलवायगा॥

(३)

लेले सूई सुविवेककी. तागा सुहाना त्यागका।
सी डाल गुदड़ो ज्ञानकी, बाणा परम सौभाग्यका॥
सब मौसमोंमें देय सुख, सीधा नहीं, उलटा नहीं।
रहता सदा ही है नया गलता नहीं, फटता नहीं॥

(४)

शमका लगा टुकड़ा प्रथम, दमका लगाले दूसरा।
दोनों मिला फिर जोड़ दे टुकड़ा तितिक्षा तीसरा॥
आनन्दमय शोभन परम चौथा लगा उपरामका।
पंचम लगा विश्वासका, छःटा लगा विश्रामका।

(५)

यम नियम आदिक अन्य भ टुकड़े बहुतसे जोड़ रे।
आर्जव दयादिक जोड़ सब ही शेष कुछ मत छोड़रे॥
निर्मानतादिक टूँक भर, समभावका अस्तर लगा।
निःशंकताकी गोट, घुँडी धैर्यकी सुन्दर लगा॥

(६)

सीकर श्रवणसे, मननसे प्यारे तुरत दे गूदड़ी।
फिर ध्यान डोरे डालकर दृढ़ ढोग कर ले गूदड़ी।
अद्वैत पक्के रंगमें रंग झक्क कर ले गूदड़ी
मन वासनायें मेट सारी पवित्र कर ले गूदड़ी

(७)

ऐसी पहिन कर गूदड़ी, निर्भय परम हो जायगा।
निर्द्वन्द हो, निश्चिन्त सुखकी नींद तू सो जायगा॥
गर्मी तनक लागे नहीं, जाड़ा नहीं लग पायगा।
ना शोक हो, ना मोह हो, सुखपूर्ण जब हो जायगा॥

(८)

ममता न होवे गेहमें, सब विश्व तेरा होय पार।
ना हो अहंता देहमें, ब्रह्माण्डमें तू जाय भर॥
सब देश तेरे देश हों. सर्वत्र तेरा राज हो।
दिन रात तू चमके सदा, क्या कल्ल हो, क्या आज हो॥

(९)

मतिमन्द विषयासक्त नर, गुदड़ी न ऐसी पा सकें।
गुरु हरि कृपासे धीर नर पहिने तथा पहिना सकें॥
जो भाग्यशाली लें पहिन, भवचक्रसे छूट जांय हैं।
साम्राज्य अक्षय पांय हैं, ना गर्भमें फिर आंय हैं॥

(१०)

भोला! मती अब देर कर, सामान सब तैयार है।
सो, पहिन, नांही देर, बेड़ा शीघ्र होता पार है॥
कल्याणकांक्षी शिष्ट जन पहिनें तथा पहिनांयगे।
हरिहर कृपा तर जांयगे, भवसिन्धुमें ना आंयगे॥

मुद्रक—प्रकाशक स्वामी मोहनानन्द। काशी विश्वनाथ प्रेस, ढुण्ढीराज गणेश, बनारस सिटी।